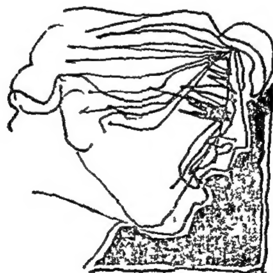


लिपि प्रकाशन
1, असारी रोड, नई दिल्ली-2

आनेवाला कल

लक्ष्मीनारायण लाल



मूल्य रु० 25 00

डा० लक्ष्मीनारायण लाल
प्रथम संस्करण 1988

प्रकाशक
लिपि प्रकाशन
1, असारी रोड दरियागज,
नई दिल्ली 110 002

AANEWALA KAL
(Short Stories)
by Dr Laxmi Narayan Lal

क्रम

श्री गगानाथ चतुर्वेदी
को सप्रेम

डोका-डोकी दतकथा

आखिर एक दिन कामिनी की काव-काव श्रीपाल चतुर्वेदी के कानो मे पहुचनी ही थी। सुनते ही पति महोदय के बदन म आग लग गई। कामिनी नामक पत्नी के मन मे तो कोई डर था नही, पढी लिखी होशियार, दिल्ली स्थित विदेशी कपनी मे साडे पाच हजार रुपये पगार पान वाली—एकदम चौचक। जो सच्ची बात थी, वह खोलकर सामने रख दी, "यू आई मीन तुम मेरे ऊपर हाथ उठाया। मैं अब तुम्हारे साथ नही नही नही रहूगी।'

'तो फिर ?"

श्रीपाल चतुर्वेदी के लगोटिया यार विजयी सिंह श्रीपाल के दोस्त मुनीर आलम से पति-पत्नी का वह कौतुक सुना रहे थ।

विजयी सिंह बात रोककर बोले, 'मैं यहा आ कैसे पहुचा, यही पहले बताता हू। दिल्ली मे श्रीपाल से मिलने का यह फल है।'

मुनीर ने कहा, "विजयी, बिलकुल धूमकेतु हो तुम। कहा से कहा। जो सुना रहे थे, वही सुनाओ। बकवास मत करो। हा, तो क्या हुआ ?"

' इतने बडे अखबार क सम्पादक श्रीपाल ने बडे इत्मीनान से इतने प्रश्न एक कागज पर लिखकर मिसेज कामिनी चतुर्वेदी के हाथ मे थमा दिया—

वसत मे कोयल क्यो गाती है ?

ऋतु आते ही वृक्षो को बौर क्यो आता है ?

गर्मी मे धुधली-सी भी न दिखने वाली बिजली पावस मे सहज क्या चमकने लगती है ?

कलिया क्यो फूलती हैं ?

नदिया समुद्र की ओर ही बहकर क्यो जाती हैं ?

पृथ्वी सूय के चारा ओर ही चक्कर क्यो काटती है ?

कामिनी ने उन प्रश्नो को फाडते हुए कहा, "क्रेजी, नानसेंस । अपने आपको समझते क्या हो, मैं वह बेवकूफ धमपत्नी नही, मैं मैं हू । जिसका नाम कामिनी है । मैं तुम्हे छोडकर जा रही हू अभी ।"

चतुर्वेदी जी ने अपने सहज मदु स्वर मे कहा, "भई, मैंने सिफ हाथ उठाया, मारा तो नही ।"

"हाथ क्यो उठाया ?"

"वह तो मुहावरा है ।"

"नानसेंस !"

कामिनी अपना सामान अपनी गाडी मे रखकर बोली, "अपनी नौकरानी चद्रा को कल ले जाऊगी, ठीक !"

' ठीक । '

चतुर्वेदी न पास आकर पूछा, 'यह अगूठी क्यो पहनाई मेरे हाथ म ?"

"प्रेम की निशानी क रूप म ।"

' कहा गया वह प्रेम ? '

उड गया वह ।"

"हवा मे हाथ उठाते ही ?"

"जी अपन मुझे समझ क्या रखा था ?"

' ता उड गया वह ?'

"जी हा ।"

"प्रेम क्या आवारा पछी है ? '

मेरे पास वक्त नही तुम्हारी बकवास सुनने '

कामिनी गुस्से से थर-थर कापने लगी थी । पूरे शब्द निकल नही पा रहे थे मुह से ।

चौवे न हवा म फिर वही हाथ उठाते हुए कहा, "प्रेम आवारा पछी

नही है । उसे पिंजडे मे बद कर नही रखना पडता ।"

"तो ?"

"तो क्या ? तुम मेरी तरफ से स्वतत्र हो जहा जाना चाहो, जा सकती हो ।"

कहने और सुनने वाले दोनो मित्रो को पता था कि श्रीपाल ने कामिनी से सिर्फ एक कागज लिखकर शादी की थी । कागज मे लिखकर दिया था 'कामिनी, तुम्हारी जब इच्छा हो मुझे छोडकर तत्काल, बिना किसी शर्त के जा सकती हो, स्वतत्रतापूर्वक ।' तभी तो श्रीपाल ने कामिनी को किसी भी प्रकार के बधन में नही बाधा था—न कानूनी न विधिवत विवाह के, शास्त्रीय ।

श्रीपाल चतुर्वेदी का कहना नही, विश्वास था कि पहले एक पुरुष है और नारी है फिर पति पत्नी । और जब दोनो मे किसी का भी दूसरे से प्रेम हो गया तो फिर बात ही अलग है । उसमे कोई कचहरी, नियम, कानून, हिंदू विवाह शास्त्र की दखलदाजी की कोई गुजाइश ही कहा रह जाती है । पति-पत्नी की पटती न हो तो सबसे पहले पत्नी यानी स्त्री के लिए रास्ता खुला रहना चाहिए । स्त्री, नारी, पत्नी की इस स्वतत्रता के विषय पर चतुर्वेदी जी ने न जाने कितने लेख, कितने सपादकीय, अपने दैनिक पत्र मे लिखे थे । उसी सबसे प्रभावित कामिनी लदन मे श्रीपाल से मिली थी । पडितजी जिस सस्थान मे भारतीय पत्रकारिता पर चार 'पेपर्स' पढने गए थे, उसी सस्थान मे कामिनी रिसर्च स्कालर थी । वही दोनो की भेंट हुई थी ।

एक शाम लदन के वारेन स्ट्रीट से पैदल चारिंग क्रास आते हुए कामिनी ने गर्दन नचाकर श्रीपाल से कहा कि आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं । 'आई लव यू ।' पडितजी पहले तो असमजस मे पड गए । फिर मुस्कराते हुए बोले, "असुविधा न हो तो रोजाना, जब तक मैं यहा हू, मेरे साथ रात का भोजन किया करो ।"

वह बोली थी, "बात असुविधा की नही, पसद की है ।"

वह सारी घटना लदन से शुरू होकर श्रीपाल चतुर्वेदी के कामिनी के साथ दक्षिण दिल्ली मे घर बसाने तक पूरे विस्तार से इन मित्रो को पता

थी। यहा तक पता था कि कैसे कामिनी, सादिक हुसैन नामक युवक के साथ अमरीका भागकर गई थी। कैसे सादिक उसे लदन मे धोखा देकर भागा था।

खैर जो हुआ सो हुआ। मगर पूरे तीन साल पति पत्नी की जिंदगी जी चुकने के बाद, हवा मे हाथ उठान भर से पत्नी के प्रेम का पछी भर से उड गया, यह बात किसी तरह से भी दोस्तो के गले नही उतरी।

सकते मे आकर दबी जबान से मुनीर आलम विजयी सिंह से कहने लगे, "यह तो बहुत बुरा हुआ, यार ! अपने यार चौबे का क्या हुआ हागा ? ऐसे जानदार शौहर की मान मर्यादा, दिल दिमाग का तो कुछ खयाल रखना था।"

मान मर्यादा, दिल दिमाग के अचीते बोल सुनकर विजयी सिंह की मुस्कराहट गायब हो गई। गोया कोई बाज एक ही झपटटे मे कोई प्यारी खूबसूरत चिडिया छीनकर उड गया हो।

विजयी सिंह बोले, "अरे, तुम अपने चौबेजी का स्वभाव तो जानते हो, कैसी सीधी कडी बात पट्ट से मुह पर दागते हैं। अरे, तुम मान मर्यादा की बात करते हो, कामिनी तो ऐसी गुस्सैल है कि उस वक्त वह कुछ भी कर डालती। बस घर, पति प्रेमी सबको एक मिनट मे छोडकर चली गई।"

"अच्छा फिर ?"

"तीन रात तो वह अकेली किसी होटल म रही। फिर लडकिया के किसी होस्टल म। अगले दिन चौबेजी से नहीं रहा गया। वह सीधे उसके दफ्तर गए। बोले—ऐ कैसी स्त्री है पुरुष की जरा-सी बात नही बर्दाश्त कर सकती। कामिनी ने कहा—तुम होगे बडे एडीटर, तुम्हारी मेरे साथ वह हरकत, जरा-सी बात लगती है ?" इसके साथ ही उसकी आखें छलछला आइ। उसके मुह से आगे एक शब्द भी न निकला। वह अपने दफ्तर के काम मे लग गई। पडितजी ने समझाना चाहा कि या गुस्सा करने से काम नही चलता। मानता हू तुम इतनी जवान और आकपक हा, मगर कोरे गोरे रूप से क्या होता है भला ! रूप स बडा गुण और गुण स भी बडी अक्ल। मगर कोई फायदा नही। पति का पत्नी पर कोई असर नही।"

यह कहकर विजयी सिंह चुप हो गए।

और क्या होता ? कामिनी को अपनी कपनी से एक फ्लैट मिला। वह भी मामूली जगह नहीं—सुदर नगर मे। श्रीपाल ने कामिनी की नौकरानी चद्रा को उसकी पाच साल की लडकी के साथ, सुदर नगर मे उस फ्लैट मे पहुचाया। वापस अकेले लोटते हुए उन्होने कहा, "ध्यान रखना, अहकार-जनित गुस्सा गाधारी के समान होता है। आखें होते हुए भी वह अधे जैसा ही बर्ताव करता है।"

मेम साहब के लिए रात का भोजन परोसते हुए एक दिन चद्रा ने कहा, 'छिमा मागू साहब, गलत बहू तो जूती मारो मेरे माथे, अपना घर काहे छोड़ि दिया जी ?'

कामिनी ने कहा, 'ये बात तेरी समझ मे नही आएगी।"

चद्रा चुप रह गई। पर कामिनी अपने आप को जवाब देती रही। स्त्री का जीवन पुरुष पर कितना अवलबित होता है, इसकी मुझे इतनी कल्पना नही थी। किसी की होकर रहने का एक ही मतलब है—उसकी पत्नी होना, और पत्नी होने का अर्थ है—उसका गुलाम होना। तो जीवन काहे का ? जीवन माने प्रेम, यह पढा था, सुना भी था। लेकिन जीवन व्यवहार मे देखा, पतग और प्रेमिका मे कोई अतर है क्या ? पतग आकाश म उडने लगती है, तब बडा मजा आता है। लेकिन वह अपनी इच्छानुसार चाहे जहा जा सकती है क्या ? जिसके हाथ म पतग की डोर होती है, उसी की इच्छा सच्ची है। विवाह चाहे जैसा हो, स्त्री तो पत्नी ही है। स्त्री कहा है वह ? स्त्री के गले मे मगलसूत्र और पतग की डोर म फर्क ही क्या है ?

उधर श्रीपाल चतुर्वेदी जी अपने काम मे मस्त। कोई भी उनसे पूछता कि पत्नी कहा चली गई तो एकदम साफ बेबाक बताते, "मुझे छोडकर चली गई।"

"आखिर क्यो ?"

'अरे क्यो क्या ? स्त्री पुरुष छोडकर क्यो न जाए ?"

"लेकिन कोई वजह ?"

"अरे वजह भी कोई चीज है। सारी जिन्दगी वजह ही वजह है। समझो वह नाराज हो रूठकर चली गई हो।"

"पर वह तो दूसरा ढूढ रही है।'

"अरे सब ही तो दूसरा ढूढ रहे हैं। आप नहीं ढूढ रहे ?"

"पंडितजी, ऐसा है "

"ऐसा-वैसा कुछ नही है। जरा अपने आप से थोड़ा हटकर खुद को देखने का सवाल है। मगर स्त्री-पुरुष का प्रेम से थोड़ा छुटकारा मिल गया है, तो इसमे दुख की क्या बात ?"

दरअसल श्रीपालजी को समझ नही आ रहा था कि लोग-बाग अपनी चिंता क्यो नही करते, सबकी अपनी-अपनी इतनी समस्याए हैं। लोग दूसरों की समस्याओ को लेकर इतने परेशान क्यो हैं ? वे मरी पत्नी के बारे म इतनी चिंता क्यो कर रहे हैं ? लोगो को बर्दाश्त नही है कि कोई स्त्री इतनी सतुष्ट और निश्चित क्यो है बगैर किसी पुरुष के। उसकी जरा सी स्वतत्रता सबकी चिंता बन गई है। उसकी जवानी, उसका खिला हुआ चेहरा लोगो को इतना दुखी क्यो कर रहा है ? उसका खिला हुआ चेहरा और उन्मुक्त जीवन ही तो उसका है। उसे लोग उसका घमड क्या मानते हैं ?

वे पुरुष, जो उसकी ओर इस नजर से देखते हैं कि काश, वह मुझे मिल जाती किसी भी रूप मे, भाव मे वे घाटा खा चुके लोग हैं। और वह कामिनी ?

अब ये लो। वह जिस मन चाहे पुरुष की ओर देखती है तो मानो उससे यह कहलवा लेना चाहती है कि तुम और मैं यह जोडी कैसी रहेगी ? फिर वही प्रश्न वह अपने आप से भी करती है—यह मेरे लिए कैसा रहेगा ?

इस प्रश्न के साथ कामिनी मे एक विचित्र सी घबडाहट बढती आ रही थी होशियार बनने की घबडाहट। जिसके कारण उसे अपने चेहरे पर बनावट पैदा करने मे मुश्किल हो रही थी। उसका डर बढता जा रहा था कि ऐसा ही रहा तो सबको पता लग जाएगा।

ऐसी चिंता कामिनी के जीवन मे पहली बार हुई, और ऐसा भय बाप रे बाप !

दफ्तर से रोज बाहर—देर रात तक क्लब, होटल, पार्टी सैर सपाटे, मिलना-जुलना, हा हा हू ही, नाच गान, दावतें ।

रात को जब नींद नहीं आती तो कामिनी पलग पर बैठी-बैठी कागज पर लिखती चली जाती—

अगर मैंने श्रीपाल से उस तरह शादी न की होती। किसी और से की होती ?

मेरा जन्म कानपुर में न हुआ होता ?

मेरे पिता पुलिस अफसर न होते ?

मेरी उस घासेबाज से भेंट ही न हुई होती ?

मेरी मां बचपन में न मरी होती ?

अगर मैं इतनी खूबसूरत न होती ?

हारने से इतना डर न होता तो ?

अगर श्रीपाल इतने बड़े अखबार का मुख्य संपादक न होता। कोई सरकारी अफसर होता या कोई बड़ा उद्योगपति। चलो, कोई राजनेता ही होता।

मेरे पास इतनी दौलत होती कि मैं जिसे चाहती उसे खरीद लेती।

सुबह तक नींद न आई। वह सारी रात इसी तरह लिखती रही। सुबह चाय के साथ नौकरानी चंद्रा ने हिंदी का वही अखबार दिया, जिसके संपादक श्रीपाल चतुर्वेदी थे। अंग्रेजी का अखबार उस दिन आया न था।

चाय पीते-पीते अखबार में चौथे पेज पर श्रीपाल का लिखा हुआ संपादकीय था, जिसका शीर्षक था—'नारद प्रसंग।' विषय था राजनीतिक, बंगाल में चुनाव संबंधी। पर शीर्षक था नारद प्रसंग। यही फूहड़ता थी उनकी। किसी चीज में कोई तालमेल नहीं। काम कुछ नाम कुछ। सुर कहीं, ताल कहीं। मुंह में हर समय पान ठूंसे-ठूंसे काम करने का नतीजा और क्या हो सकता है।

कामिनी ने नौकरानी से पूछा, 'ये नारद कौन है ?'

उसने गर्दन चमकाकर कहा, "नारद हैं, साहेब !"

"कौन हैं ? जल्दी जल्दी बता।"

लव, जल्दी लेव साहेब ! किया मंड, किया घमंड। किया आंसु, रिया पांसु। अरे नारद की क्या तपस्या क्या इंदर भगवान की खिसियाहट। हुआ ई साहेब कि एक बार नारदजी तपस्या करने लागे। मुनि की गति

देखि इदर भगवान गए डरि। सो साहेब, झट पट कामदेव को बुलाई के आडर दिया कि जाओ नारदजी की समाधि तपिस्या भग करो। सो गया कामदेव नारद के पास, मुला वहा से भागा, फिर नारदजी प्रसन्न होइ, गए शिवजी के पास। मन मा अहकार हुआ कि मैंने काम को जीत लिया। शिवजी नारद जी से बोले, देख्यो भइया, अपनी जीत की ई बात विष्णु भगवान से न कहना। मुला होनी कौन टारता है। नारद विष्णु भगवान के पास भी अपनु अहकार झार दियो तब ''

चद्रा की नजर पड़ी। हाय दइया, मेम साहेब तो सो गई थी। चलो अच्छा ही हुआ। रात को अब नीद भी तो नही आती। करीब साढे नौ बजे उनकी नीद खुली। खुली क्या, किसी सुभाष भाटिया का फोन आया बबई से, उसी वजह से नीद टूटी। पता नही क्या बात हुई फोन पर, उसी शाम भाटिया से मिलने बबई उड गई।

मगर इच्छा और मशा मे फर्क होता है। कामिनी की न इच्छा पूरी हुई न मशा। लौट आई दिल्ली। न जाने कौन-सी चीज पुराने घर मे छूटी थी, वही ढूढने आई। चीज तो मिली नही। नौकर हरीराम से पूछा कि सपादकजी कहा है? उसने भी जैसे को तैसा जवाब दिया—खुद देखि आवो न, बुलबुल उडाना देखि रहे हैं।

कामिनी ने गर्दन घुमाकर देखा, चतुर्वेदीजी भर मुह पान दाबे खिडकी के बाहर बुलबुल उडाने फिर ठाट पै वापस बठाने की खेल देखा मे मगन थे। कामिनी को हैरत न हुई। मन-ही-मन यह सोचती हुई घर से बाहर निकल गई कि य आदमी एकदम 'यूराटिक' है। इससे कोई क्या बात करे। ये किसी की आवभगत क्या करेगा, इसे तो सिर्फ अपने पान स मतलब है।

स्वारथ तिरिया, स्वारथ काम, स्वारथ जीवन, स्वारथ नाम। मतलब काम और नाम से जितना फर्क, उतना ही फर्क आगरे के उस सक्सेना म था, उससे ज्यादा चढीगढ वाले उस मल्होत्रा मे था। उससे भी ज्यादा बदतर फर्क साबित हुआ बबई का भाटिया। अजीब हालत है इन मर्दों की। बातें इतनी तारीफें इतनी, दिखावे इतने सारे, लेकिन सब मरे-मारे। बातें अपने लिए तो उडान भरती, पर दूसरे के लिए—खासकर औरत के लिए उनके

कलेजों पर बखिया लग जाती। जिसे जो मिल जाये उसकी कोई कीमत नहीं, जो नहीं मिले वही सब कुछ।

देखते-देखते एक साल बीतने को आए। कहीं मन ही नहीं जमा। यह नहीं तो वह। वह नहीं तो वो। उसमे ये कमी, तो उसमे अगर एक वह बात और होती तो बात बन जाती। इसी उधेड़-बुन मे कामिनी के शरीर का वजन जितना बढ रहा था, उसी अनुपात मे उसका आत्मविश्वास घट रहा था।

एक रात जब ढाई बजे तक उसे नींद नहीं आई, तो फिर उसने कोरे कागज पर लिखना शुरू किया—

जब मेरी तनख्वाह सात हजार हो जाएगी।

जब मेरा वजन इतना कम हो जायेगा।

जब चटर्जी की पहली औरत मरेगी।

जब सिन्हा मुकदमा जीत जाएगा।

लिखते-लिखते अचानक उसका ध्यान गया नौकरानी चन्द्रा की आवाज पर। उसकी बिटिया को कल से बुखार था। उसे सुलाने के लिए वही कह रही थी कि 'एक था डोका, एक थी डोकी। डोका ने मारा, डोकी चली रिसियाय। जाते जाते डोकी को मिला एक बरगद का पेड। बरगद ने पूछा—डोकी कहा जा रही हो? डोकी ने बताया कि डोका ने डोकी को मारा, सो डोकी चली रिसियाय। बरगद ने पूछा कि डोकी तुम मुझ पर रहोगी? डोकी ने पूछा कि तुम मुझे क्या खिलाओगे, क्या पहनाओगे, कहा रखोगे? बरगद ने कहा कि तुम्हे खिलाऊगा अपना फल, पहनाऊगा अपना पत्ता और रखूगा अपने खोडर म। इस पर डोकी ने कहा कि नही, नही, नहीं तुम पर नही रहूगी।

चलते चलते फिर रास्ते मे मिला पोखर का एक बगुला। उसने पूछा कि डोकी कहा जा रही हो? डोकी ने वही जवाब दिया। बगुले ने पूछा कि मुझ पर रहोगी? डोकी ने वही पूछा कि क्या खिलाओगे, क्या पहना-ओगे और कहा रखोगे? बगुले ने कहा कि पोखर की मछली खिलाऊगा,

पोखर की काई पहनाऊगा और पोखर के किनारे रखूगा। ढोकी ने मना कर दिया। इसी तरह एक सियार मिला। उसे भी ढोकी ने मना कर दिया। फिर मिला एक चूहा। चूहे ने भी वही बात कही। ढोकी ने भी वही बात पूछी। चूहे ने कहा कि बत्तीसो व्यजन खिलाऊगा। सोलहो शृगार कराऊगा राजमहल मे सुलाऊगा।'

कामिनी के लिए उसी क्षण बबई से फोन मिला कि अगले दिन उसे अहमदाबाद पहुचकर बबई स्थित उद्योगपति हनुमतराव जोशी से उनकी कोठी मे मिलना है। जोशीजी से शादी की बात अगर आपने मान ली है तो तैयारी पूरी हो चुकी है।

सुबह कामिनी एयरपोर्ट जाने की तैयारी कर चुकी थी। चाय पीती हुई उस दिन के हिंदी अखबार पर नजर दौड़ा रही थी। सहसा श्रीपाल चतुर्वेदी की एक टिप्पणी पर नजर रुक गई। लिखा था—

असतुष्टा द्विजा नष्टा
सतुष्टाच महीपति।
सलज्जा गणिका नष्टा
निलज्जाश्च कुलागना।

कामिनी को लगा, श्रीपाल ने जान बूझकर पूरे इरादे स वह टिप्पणी उसे चोट पहुचाने के लिए छापी है। नारद प्रसग जैसे सपादकीया क भी इरादे अब साफ हो चुके थे। उसने सोचा, मुहतोड जवाब देने का समय आ चुका है। फोन मिलाया। पता चला चतुर्वेदीजी सो रहे हैं। नौकर को धमकाया। चतुर्वेदीजी जगकर फोन पर खिहसते हुए बोले मै कोई सपना तो नही देख रहा हू। हा हा, मेरी बात तो सुनो। अच्छा चलो सुनाओ तुम्ही।"

अच्छा अच्छा सुदर, बहुत सुदर" जैसे टेक से चतुर्वेदी कामिनी की आवेश भरी बातें सुनते रहे। मुह मे पान लेकर अत मे बोले, 'मेरी बधाई स्वीकार करो, देवि! सिफ इतना याद रखना कि मद की अक्ल ढकी रहनी चाहिए और औरत की शक्ल। कुदरत को ढापना ही इसान की समझदारी है। इसी खातिर हम कपडे पहनते हैं।'

झटके से कामिनी ने फोन पटक दिया। सब कुछ जैसे झनझना उठा।

कामिनी का यह फ्लैट। फ्लैट के नीचे आकर खड़ी हुई टैक्सी। उस दिन का वह अखबार। चद्रा नौकरानी के कान। चौके-चूल्हे के बर्तन। फ्लैट से बाहर गुलमोहर की डाल पर बैठे हुए बुलबुल के जोड़े।

दिल्ली की बिजली अहमदाबाद आ ऐसी गिरी, ऐसी गिरी कि कोई क्या करे, और क्या कहे? तीन रातो के बाद उस आलीशान कोठी के एकात कमरे म हनुमतराव जोशी अपने हाथो मे कामिनी के हाथ लेकर पिघले स्वर में कहने लगा कि फकत तीन रात साथ रहने से एक दूसरे को ठीक से नही जाना जा सकता, इसलिए

थोडी देर तक तो कुछ भी समय मे नही आया। कामिनी का सारा अहकार उसे ही घूरने लगा। नारद प्रसग स्पष्ट होन लगा। डोका डोकी उसकी समझ मे बैठने लगा। अपने से दूसरे की बात का रहस्य भी खुलने लगा। पर मन तो मन ही है। मन तन और धन से भी बडा है। सो उसी मन की मालकिन कामिनी दिल्ली लौटी। पीछे-पीछे वही हनुमतराव जोशी। कैसा भी नया स्वाद हो, उसके पीछे भागने, दुहराने की बेसब्री सारा कुछ बेस्वाद कर देता है। कहावत है नई बात एक दिन खीचातानी तीन दिन। उसके आगे 'हार्ट अटैक'। जी हा, पालम हवाई अड्डे से महारानी बाग पहुचने से पहले मायापति साहूकार हनुमतराव जोशी के धडकते दिल ने जवाब दे दिया।

अखबार के दफ्तर म अपनी सपादकीय कुर्सी से लेकर टेलीप्रिंटर तक मुह मे पान दबाये श्रीपाल चतुर्वेदी चहलकदमी कर रहे थे। शाम के साढे आठ बज रहे थे। टेलीप्रिंटर पर खास चटकदार समाचार आ रहा था। समाचार देने वाला भी जमकर मजे ले रहा था—चटकार लेता हुआ। अहमदाबाद गुजरात के युवा उद्योगपति हनुमन्तराव जोशी युवती कामिनी दिल का खेल दिल का दौरा दिल्ली मे कामिनी कामिनी के पति *कामिनी के भूतपूर्व प्रेमी स्वतत्र कामिनी*

झपट्टा मारकर टेलीप्रिंटर के कागज को चतुर्वेदी ने मशीन से फाड लिया। उनके दिल के कागज पर मानो धमाधम छपन लगा था—

जानवर तो जानवर है। भागते हुए यदि बस मे न आय तो कितना जोखिम अपने लिए खतरनाक दूसरे के लिए भयकर।

सब कुछ वही वैसे छोडकर श्रीपाल चतुर्वेदी जी धडधडाते हुए सुदर नगर, कामिनी के फ्लैट मे पहुचे। उस वक्त कामिनी औंधे मुह सोफे पर पडी रो रही थी। पडितजी ने दोनो बाहो से पकडकर उसे इस तरह उठा लिया जैसे मा नवजात शिशु को उठाती है।

"उठो। चलो।"

'कहा ?"

"चलती हो कि नही ?"

"नही।"

"उस बार सिर्फ हाथ उठाया था, अब नही छोडूगा।"

"तेरी ये हिम्मत ?"

''हिम्मत नही प्राप्ति की स्वीकृति।"

"ह्वाट ?"

उठो, चलो मेरे साथ बताता हू न। पराई भाषा मे नही, अपने को अपनी ही भाषा मे चलो।"

ऐसे आदेश के बाद कैसी देर। एक साथ हवा मे चार आखें दो हो गयी।

अपने घर पहुचकर चौबेजी ने कहा कि बावली, मेरी चौबाइन होकर तू इतना भी नही जानती कि मा अपने बच्चे पर कैसे हाथ उठाती है। बोल, हवा को कभी बयार की चोट लगी है ? या कच्चे बरतन को कुम्हार के हाथ की चोट लगी है। वह तो हाथ का परस है, जिसे स्पर्श कहते हैं पढे लिखे लोग। मैं तो परसता हू। लो आज पान-परस करो।

मुनीर आलम ने कहा "भाई, वाह ! कभी-कभी इसान की कारीगरी से कुदरत का मेल बठ ही जाता है। अपना तो कभी मेल नही बठा।"

विजयी सिह बोल ' देखो भाई चौबजी-जैसा दिल दिमाग तो अपन लोग के पास है नही। याद है बचपन म बुलबुल फसात थे। उडात थे, उडाकर फिर बुला लत थे अपन ठाव पर।"

दूसरा अक

पहला अक ।

फिर दूसरा अक ।

केवल नाटक मे ही नही होता । सपूण जीवन एक नाटक है तो जीवन का भी दूसरा अक होता है । मिस प्रिया राजन इससे भी और गहरे जाती हैं । वह कहती है

पर सुनने वाला कौन है, तभी कहने का अथ मिलता है । सुनने वाला है पाथ सारथी ।

पाथ से प्रिया की पहली भेंट रतलाम स्टेशन के प्रथम श्रेणी के विश्रामालय मे हुई थी । यह बात दो-ढाई साल पहले की है । वर्षा के दिन थे । नही, भूल हो रही है—वर्षा की रात थी । घनघोर बारिश हो रही थी । पाथ दिल्ली से आया था और इदौर की गाडी पकडनी थी उसे ।। प्रिया इदौर से आयी थी और बबई जाने की ट्रेन लेनी थी उसे । पर वषा ने दोनो की गाडिया छुडा दी थीं ।

पर यह बात तो बाद म प्रकट हुई । उस रात उस वेटिंग रूम मे केवल तीन लोग थे । पाथ, प्रिया और एक बूढा आदमी जिसकी गोद मे एक बच्चा चीख-चीखकर मानो दम तोड रहा था ।

पाथ के मुह से निकला, 'अरे भाई, बच्चे को चुप कराओ ! चुप कराओ न ! इसे गोद मे लेकर जरा बाहर टहला दो, बाबा !"

बूढ़े पर कोई असर नही । तब प्रिया राजन के मुह से निकला था,

"भाई साहब, आप ही इनकी मदद कीजिए न !"

पाथ ने उस अपरिचित स्त्री की बात को जैस आज्ञा के रूप म मानकर उस बच्चे को गोद मे उठा लिया था। कमरे से बाहर निकलते ही सचमुच बच्चा शात हो गया। थोडी ही देर मे बच्चा पाथ के अक से लगकर सो गया।

बच्चे को बूढे के पास सुलाकर पाथ जसे ही अपनी आराम कुर्सी पर बठने लगा था तभी उस अपरिचिता ने उसके पास आकर पूछा, "आपको कहा जाना है ?"

"इदौर।"

"आप इदौर के रहने वाले हैं ?'

'जी।'

क्या करते है ?'

फोटोग्राफी की दुकान है।'

'स्टूडियो है ऐसा क्या नही कहते ?"

बस इतनी सी ही घटना थी कि इसके बाद दोना ने सारी रात बातें करते-करते गुजार दी। प्रिया न जस अपना पूरा परिचय ही दे डाला। वह आध्र प्रदेश की है। इस समय हैदराबाद के एक गल्स कॉलेज म पढाती है। वह अविवाहित है। शादी क बारे म अभी तक कभी सोचा ही नही।

और प्रेम ? कभी किसी से प्रेम तक नही किया ?"

'जी नही कतई नही।"

'यह कैस हो सकता है ! आप इतनी सुन्दर आकषक, स्माट और आधुनिक यह कस हो सकता है कि कोई पुरुप आपस आकृष्ट न हुआ हो !"

ऐसा कभी नही हुआ !"

'आप सच बोल रही हैं ?'

'झूठ भी क्या बोलू ?"

'ताज्जुब है !"

"इसम ताज्जुब करन की ऐसी कोई बात नही।

"क्या ?

मिस राजन ने खुली जबान से कहा था, "मैं एस पहले नही थी। बडो

डरपोक और घर की चारदीवारी मे रहने वाली बेहद सुरक्षित लडकी थी। मेरे पिता पुलिस सुपरिटेंडेंट थे। मैं कभी अकेली बाहर नहीं गई। मैं पहले ऐसी नहीं थी।"

दुबारा यह कहने पर पार्थ ने और आश्चर्य से पूछा था "क्या मतलब? आप पहले इतनी सुदर नही थी?"

"उसका तो पता नही।"

"तभी तो आप अब तक इतनी सुदर हैं।"

"आप इतनी तारीफ क्यो किये जा रहे हैं?"

"मैं फोटोग्राफर हू न।"

तो?"

'तो क्या?"

"आप क्या समझते हैं मेरी उमर क्या है?"

"बाईस साल।"

"जी नही, बत्तीस साल तीन महीने।"

"आप झूठ बोलती हैं।"

"चलिए, मैं झूठ बोलती हू।"

अगले दिन दोनो की यात्राए एक हो गईं। दोनो इदौर पहुचे थे।

इन्दौर मे पार्थ का स्टूडियो उसी के घर के बाहरी कमरे मे था। बिलकुल आधुनिक साज-सज्जा से सजा हुआ स्टूडियो। तरह-तरह के कैमरे। न जाने कितने चित्र खीचे थे पार्थ ने प्रिया के।

इसे प्रिया ने पहला अक कहा था पार्थ से। इसके बाद मुश्किल से दो-ढाई वर्ष बीते होंगे। हा बीते होंगे, दोनों अपने-अपने ढग से वर्ष, महीने, दिन गिनते रहे हैं। और दोनो को इस पर विश्वास नही होता।

कैसे इतनी जल्दी इतने दिन बीत गए। इस बीच उनकी कुल सात मुलाकातें हुई हैं। रतलाम स्टेशन वाली वह पहली मुलाकात भी उसमे शामिल है। दूसरी मुलाकात उनकी हैदराबाद मे हुई। पार्थ खुद गया था प्रिया से मिलने हैदराबाद। उनकी तीसरी भेंट फिर इदौर मे हुई। प्रिया आई थी भेंट करने। चौथी भेंट उनकी त्रिचूर मे हुई।

त्रिचूर की उस भेंट मे पार्थ जैसे पहली बार प्रियाराजन का परिचय

पा सका। अपनी मौसी के बगल में एक कमरे मे बठे दोनो काफी पी रहे थे। प्रिया केरल की स्त्री का पहनावा पहने थी। रेडियाग्राम म एक रिकाड बजाते हुए उसने कहा, यह मैं गा रही हू। मैं पहले बहुत अच्छा गाती थी। मेरे गाए हुए दो रिकाड्स हैं।"

पार्थ उस सगीत म खो गया था। वह सगीत-रस अलौकिक था। उसमे एक अजीब रस छनक रहा था।

सगीत के बाद प्रिया ने जैसे सास रोककर पार्थ को देखा। फिर धीरे-धीरे कहने लगी, "मुझे एक जगह पढाने की नौकरी मिली। सुबह ट्रेन से वहा जाती पढाकर शाम को घर लौट आती। यह मेरी जिंदगी का पहला ऐसा मौका था कि मैं अकेली इस तरह रोज सुबह शाम ट्रेन की यात्रा करती। ट्रेन मे एक दिन मुझे एक मुसाफिर मिला। हमारी इधर-उधर की बातें हुई। उसने बताया वह इजीनियर है। वह भी अपने काम पर इसी तरह सुबह जाता है और शाम को लौट आता है। वह अक्सर मेरे साथ हो लेता। सहयात्री के रूप मे, आदमी के भी रूप में वह मुझे रुचिकर लगा। हर तरह से मुझ पर ध्यान देता। और एक दिन मुझे लगा वह अपनी तरफ से मेरे काफी करीब आ गया है। उसने बडे विश्वास से पूछा— आप शादी-शुदा हैं?' 'जी नही, शादी करने के बारे म मैंने अभी सोचा तक नही। और आप?' मैंने एक दिन पूछा। उसने बताया—वह भी क्वारा है। हर रोज सफर म वह कोई न-कोई दिलचस्प बात छेड देता और बातो ही बातो मे बडे मजे से हमारी यात्रा कट जाती। उसकी उन तमाम बातो म उसका यह भी एक खास मकसद होता कि वह अपने बारे मे मुझे जानकारी दे। मसलन अपने घर-परिवार के बारे म। अपनी सेहत और भोजन के पसद नापसद के बारे मे। अपनी तनख्वाह और आर्थिक स्थिति के बारे मे। उसका वह परिचय पाना मुझे अच्छा लगता। वह सगीत म दिलचस्पी रखता है और कला साहित्य के भी बारे म उसकी अच्छी जानकारी है।

'उससे मैंने बहुत सी बातें सीखी। अनेक चीजो के बारे म मुझे जानकारी हुई।

एक दिन कॉलेज के पते पर मुझे उसका एक पत्र मिला। उस पत्र को पढकर मुझे तनिक भी आश्चय न हुआ। वह खुल्लम-खुल्ला प्रेमपत्र तो

नही था। वह कुछ दिनो के लिए बंगलौर जा रहा है अपनी बुआ को देखने जो मृत्युशय्या पर हैं। वह कब किस दिन आयेगा, इस बीच उसने मेरे बारे मे क्या सोचा है और आगे किस रूप मे मुझे देखना चाहता है—ये सारी बातें बहुत अच्छे ढंग से उसके पत्र मे लिखी हुई थी। मुझे उसका वह खत बहुत अच्छा लगा। उसके बिना मेरी यात्रा मुझे उबाती और उसकी मुझे बहुत याद आई।

'वह जब लौटा, तो मेरे लिए कांजीवरम की एक कीमती साड़ी ले आया। मुझे अच्छा लगा। फिर मैंने उसे अपने घर पर आने की दावत दी। वह शौक से आया और मेरे मां-बाप को मुझसे भी अधिक अच्छा लगा।

"यह सब पूरे सात महीनो के भीतर हुआ। वर्ष बीतते-बीतते उसने शादी का प्रस्ताव रखा। मेरे मां-बाप ने स्वीकार कर लिया। मैंने भी स्वीकृति दे दी।

'एक दिन उसने बताया कि वह तमिल ब्राह्मण है। उस दिन मुझे पता चला, मैं केरल की नायर हू। मैंने पूछा कि तमिल ब्राह्मण और केरल की नायर फेमिली मे शादी करने मे क्या कोई बाधा है? उसने बताया—ऐसा कुछ नही है। मेरी मां बूढ़ी है। बहुत पुराने ख्यालात की है। उसके मरते ही हमारी शादी हो जायगी।

"एक बार मैं कॉलिज के काम से जबलपुर आई। वह मेरे साथ आया। अब तक यह स्थिति हो गई थी कि न मैं उसके बिना रह सकती थी न वह मेरे बगैर।

' अब तक पूरे दो वर्ष बीतने को आए थे। वही जबलपुर मे एक दिन जब मैं उसकी अटैची मे उसके कपड़े रख रही थी तब मुझे उसके कुछ खत पढ़ने को मिले। कुछ अदालती कागजात भी थे उसमे। पढ़कर मुझे पहली बार पता चला कि वह विवाहित है। उसके दो बच्चे हैं। पत्नी से तलाक पाने के लिए 'डाइवोर्स' का मुकदमा जज के इजलास में है। उस दिन मैं क्रोध से मानो पागल हो गई। इन खतों और कागजों को उसके मुंह पर फेंककर मैंने उस दिन यह साबित कर दिया कि सचमुच मैं नायर घर जाति की स्त्री हू। मै रोती रही। वह मुझसे माफी मांगता रहा। मैं हर चीज को बर्दाश्त कर सकती हू पर झूठ को नही। वह भी प्रेम का

आधार झूठ और छल हो यह मैं कभी सोच नहीं सकती।

"उस दिन से मेरा उसका सबध टूट गया। वह बहुत रोया-गिडगिडाया।
मैंने माफ कह दिया—'नथिंग डूइंग।'

यह कहकर प्रियाराजन ठहाका मारकर हस पडी। फिर बोली, "सो मिस्टर पाथ सारथी यह मेरे जीवन के नाटक का पहला अक है। और मेरे उस आदमी के जीवन का दूसरा अक। पर मुझे दूसरे अक का एक नया गहरा अर्थ मिला है। यह दूसरा अक क्या होता है—अब मैं बता सकती हू। जो जीवन म घटा हुआ रहता है, मतलब जो जीवन मे छिपा रहता है, जो उसकी सच्चाई है वही उसका दूसरा अक। पहला अक तो सदा पहला ही अक दिखता है, होता है, पर अगर सच्चाई मे ही झूठ है—मतलब दूसरा अक ही निराधार है तो पहला अक—पहला 'एक्ट' भय और प्रतिक्रिया के अलावा और कुछ नही। जी हा, जीवन नाटक उल्टे चलता है—पहले 'सेकॅड एक्ट' फिर 'फस्ट एक्ट।' 'सेकॅड एक्ट' वह है जो 'फस्ट एक्ट' को मदद पहुचा सके। 'सेकॅड लाइन आफ एक्शन इज सकॅड एक्ट।'"

"तो ?" पाथ ने स्नेह से पूछा।

"तो क्या ?

अब आप फिर किसी से प्रेम नही करेंगी ?"

"क्यो नही ? क्या आपको ऐसा नही लग रहा ?

"लग रहा है।'

फिर ऐसा प्रश्न क्यो ?"

पाथ का माथा झुक गया। वह अपने आपको प्रियाराजन के सामने थोडा छोटा महसूस करने लगा।

प्रिया ने मुस्कराते हुए पूछा, 'आपका दूसरा अक क्या है ? मतलब दूसरे अक के बारे मे क्या ख्याल है ?"

पाथ ने कहा, 'मैं शादीशुदा हू। मैं तीन बच्चो का पिता हू। मैं अपनी पत्नी और बच्चा को बहुत प्यार करता हू।"

प्रिया के मुह से निकला 'कितना सुदर है प्यार करना।"

'आप भी कितनी सुदर हैं।"

'बिना प्रेम के सदरता एक छल है।'

"आपको याद है—हमारी पहली मुलाकात—उसे आपने पहला अंक कहा था।"

प्रिया ने उदास स्वरों में पूछा, "क्या फिर पहला अंक हो सकता है?"

"हो सकता है क्या, होता है।"

'कैसे ?"

"सच्चाई है जहां—जो छिपा है, घट चुका है जो, जब वह इतना सच्चा है—तो वही तो प्रेम है।"

"आप मुझसे प्रेम करते हैं ?"

"आपको क्या लगता है ?"

"मैं उसे अपने कानों से सुनना चाहती हूं। उसे अपनी आंखों से देखना चाहती हूं। उसे अभी इसी क्षण भोगना चाहती हूं।"

यह कहती हुई प्रिया पार्थ की बांहों में लिपट गई। पार्थ उसे गहरे आलिंगन में बांधे रहा।

"तुम मेरी पहली प्रिया हो !"

उसने पार्थ के माथे को चूमते हुए कहा, "मैं दूसरी हूं—यह सुनने में मेरा कोई अपमान नहीं।"

"मेरी प्रिया !"

दोनों न जाने कितनी देर तक चुपचाप एक-दूसरे को महसूस करते रहे थे। दोनों एक दूसरे से कृतज्ञ थे।"

प्रिया ने बच्चों की तरह पूछा, "तुम्हें तुम्हारी पत्नी की याद आई ?"

"आई।"

"मैं कितनी खुश हूं।"

फिर मौन छा गया। बड़े संकोच के साथ पार्थ ने पूछा, "तुम्हें उसकी याद आई ?"

' आई। अब भी उसी की याद आ रही है।"

"क्या ?'

वह झूठ क्यों बोला ? छल क्या किया मेरे साथ ? वह मुझे पहले ही सब सच बता सकता था।"

"उसे भय था।"

"क्या ?"

"तुम हाथ से छूट न जाओ।"

"मैं कोई पदाथ हू ? बोलो तुम पुरुष हो, मुझे बताओ ? '

"उत्तर तो आपने पा लिया है।"

"क्या ?"

"जब दूसरा अक ही निराधार हो तो पहला अक कहा से पूरा होगा !"

प्रिया की आखो से अनायास आसू बहने लगे। पार्थ उसका भीगता हुआ कोमल, निर्दोष मुख निहारता रहा।

सिसकियों के बीच प्रिया ने पूछा, ' ऐसा क्यो होता है ?"

"आत्मविश्वास की कमी।"

' आत्मविश्वास क्या होता है ?"

'पुरुषाथ।"

' पुरुषाथ क्या है ?'

"प्रेम।"

"प्रेम क्या है ?"

'ईमानदारी।"

' ईमानदारी क्या है ?"

'एक-दूसरे से सबधित होना।"

' सबध क्या है ?"

दुख।"

'दुख क्यो है ?"

हर कोई दूसर से अलग है। अपने आप स ही दूर है।"

प्रिया क मुह से निकला, "दूरी तो विरह है। '

पार्थ बोला, "हा, अगर प्रेम है तो !"

काली

रात को साग-भात खा चुकने के बाद बडे भाई सचित ने अपने छोटे भाई सतोखी से उस विषय की चर्चा छेडी, 'क्या रे छोटू, सुना है तू नट पहलवान के दरवाजे पर बैठा रहता है ! तुझे अपनी रोजी रोटी का भी कुछ खयाल है ?"

मगर इस पर सतोखी की जो प्रतिक्रिया हुई, उसके लिए सचित जरा भी तैयार न था।

"तुमसे मतलब ! किसी से भी कोई मतलब ! मैं जहा चाहू जाऊगा ?"

"दिन भर नटुआ पहलवान के घर वेगारी करते हो !"

"बाबू देखो, चुप्प रहो, हा !"

बेचारा सतोखी ! निचलाई रात मे नटुआ पहलवान की ढोल पर तडकती लकडी से जो आवाज उसके कानो म पडी, वह अपने आपको रोक नहीं सका। ढोल पर डिम डिम डिम डिम की आवाज पक्के दो कोस दूर से यहा सिर्फ सतोखी के कानो आ रही थी। नूरचक गाव म जैसे और किसी के कान नहीं थे। बेचारा सतोखी !

दुबले-पतले शरीर पर वही पहलवानकट झुल्लदार लबा चौडा ढीला-ढाला कुर्ता, नगे पैर, कधे पर सबी वजनी लाठी—चल भाग सुलेमानपुर गाव की ओर। सावन की अधियारी रात अकेला सतोखी, नटुआ की ढोल की आवाज उसे खींच रही थी। वह कितनी जल्दी पहुचे सुलेमानपुर म नटुआ लहरी के पास। हाय राम, नटुआ लहरी पहलवान खाट पे बैठा टाल बजाता

आल्हा गा रहा होगा उसकी जवान बेटी पहलवान के स्वर मे स्वर मिला-कर सगत कर रही होगी। हाय रे काली! गजब मतवाली!

क्या जाने, देर हो जाने पर पहलवान आल्हा गाना बद न कर दे। काली को नीद न आने लगे। रास्ते मे कछार का जगल, रात का जगली जानवर रास्ते पर घात लगाकर बैठते हैं। रास्ते से ही चलकर कछार का पानी पीने आते हैं। वह साला लकडबग्घा कही घात मे छुपा हुआ न हो। जगल मे डर के मारे कभी आगे और कभी पीछे देखता दौडता हुआ सतोखी आगे बढ रहा था। समूची जगल की राह वह अपनी छाती पर थूकता, राम नाम लेता दौड रहा था। डर के मारे उसके सूखे मुह से थूक निकल रहा था, फिर भी सतोखी गुनगुनाता हुआ गाता जा रहा था

"ओ काली माई डिवहारे बाबा
सम्मत माई देव असीस
लरिकँ जीयँ लाख बरीस।
राम नाम लडडू गोपाल नाम घिव
ले रे लकडबग्घा मोर अगूठा पिव।"

उस समय राह मानो खत्म ही नही होना चाहती थी। ढोलक पर डिम-डिम डिम डिम का सगीत और भी छाती बेध रहा था सतोखी की। अत मे नटुआ लहुरी पहलवान के दरवाजे पर सतोखी हाफ्ता हुआ जा पहुचा।

उधर नटुआ पहलवान आज आल्हा-ऊदल की लडाई नही आज बेला का ब्याह गा रहा था। गाव के काफी लोग नटुआ के ओसारे मे बैठे हुए थे। नटुआ मस्त था आल्हा गायकी म सतोखी की नजर बस नटुआ पहल-वान की जवान सुदर बेटी काली पर जम गई।

काली जैसे-जैसे आल्हा गाती जा रही थी अपने पहलवान पिता के साथ सतोखी खमिया के पीछे अपना मुह छिपाकर रोता जा रहा था। खुद कोई अता-पता नही बस, आखो स आसू अपने आप टलक रहे थे।

यह पिछले साल बसाख माह स हो रहा है सतोखी के साथ।

इसस पहले सतोखी ऐसे नही थ। मजाल क्या कि किसी औरत की तरफ आख उठाकर भी देख लें। तब उनके जीवन का एक ही सपना एक

ही लक्ष्य था—पहलवान बनना, लठैत होना। इसके लिए अखंड ब्रह्मचर्य, औरत की छाया भी न पड़े शरीर पर—ऐसा गुरुमंत्र दिया था गांव के वयोवृद्ध पुलपुल बाबा ने—जो अपने गांव-जवार के काफी बड़े पहलवान और मशहूर लठैत रहे थे अपने जमाने में। इसका नतीजा यह हुआ कि बढ़ई जात के सतोखी बढ़ईगीरी छोड़कर बकरी चराने लगे। बकरियां चराते। बकरियों का सारा दूध पी जाते और बकरों को बेचकर अन्न-पानी, कपड़ा-लत्ता खरीदते। औरत की छाया न पड़े—इसके लिए अपने बड़े भाई सचित से भी अलग होकर बाट-बखरा कर लिया। सचित की स्त्री कपिली को भौजी कहकर पुकारना-बुलाना तक छोड़ दिया।

तब सतोखी को सिर्फ एक ही शौक था—नाच देखना, कहीं भी नाच हो, चार छह कोस के भीतर, सतोखी नाच देखने जरूर जाते। गांव का कोई साथी हो, न हो, सतोखी पहलवानी बाना बनाए हुए कंधे पर चार सेर का लट्ठ लिए नाच में हाजिर। रास्ते में चाहे नदी-नारा परै, चाहे जंगल परै। चाहे आग बरसै, चाहे पानी, चाहे पत्थर पर। सतोखी नाच जरूर देखेंगे और रास्ते भर कुछ-न-कुछ अटरम-सटरम जरूर गाते जायेंगे।

> बिना मोती के चैना पड़त नाही।
> पिया सझवै से भितरी बुलावै
> करम मोरे आवै, वगैरह ! वगैरह !!

तो, बसाख महीने के शुरू के दिनों की बात है। सतोखी कहीं से रात भर नाच देखकर अपने गांव लौट रहे थे। रास्ते में वही सुलेमानपुर गांव पड़ा। गांव के सिवान में गन्ने के खेत के पास एक दृश्य देखकर सतोखी मंत्रमुग्ध हो गए। एक जवान लड़की से एक जवान की लड़ाई हो रही थी—भयंकर मारपीट। गांव के सारे लोग तमाशा देख रहे थे। सतोखी आश्चर्यचकित—हे भगवान, यह क्या हो रहा है ! लड़की जवान को दौड़ा-दौड़ाकर मार रही है। अंत में जवान को पटककर उसके सीने पर पांव रखकर कहती है 'बोल हरामजादे, फिर करेगा ऐसी हरकत मेरे साथ। तुझे जिंदा ही चबा डालूंगी, अगर फिर मेरी तरफ आंख उठाकर देखा।'

गहरे सांवले रंग की वह लड़की—उसकी हिम्मत और बहादुरी देख-

कर सतोखी वहीं ठगा-सा खड़ा रह गया।

सब चले गए। खेल खतम हो गया। लडकी अपने खेत में जाकर हेंगे पर खड़ी होकर खेत हेंगाने लगी। जिस तरह बैलो को चटकारी देकर वह हेंगा मार रही थी, सतोखी उसे एकटक निहारता रह गया था।

मेड़ पर खड़ा खड़ा न जाने कब सतोखी खेत में चला गया। हेंगे के पीछे-पीछे चलता हुआ खेत के घास फूस बीन-बीनकर खेत के मेड पर रखने लगा। एक घसियारा उधर से आया और उससे पूछा, "कौन हो, भइया ?"

सतोखी चुप रहा।

घसियारा बोला, "समझि लेव हो, नटुआ पहलवान की छोकरी है, जिसका कल्ला पकड लेती है, वह पानी मागने लगता है, हा।"

सतोखी ने पूछा, "इसका नाम क्या है ?'

"काली।'

"किसकी बेटी है ?"

"लहुरी नट पहलवान की।"

"कौन सा घर है पहलवान का ?"

'ऊ देखो नरकुल के पास जहा भैंस बधी है।"

सतोखी ने खेत की घास को अपने अगाछे में बाधा। नटुआ पहलवान के नेसुहा पर बैठकर चुपचाप घास काटने लगे। घास काटकर भैंस की हौदी में सानी करने लगे। नटुआ पहलवान डंड बैठक लगा रहा था। बदन से पानी की तरह पसीना बह रहा था।

उधर नटुआ का ध्यान गया तो डाटकर पूछा 'कौन है रे ?'

सतोखी ने पास आकर कहा, 'महाराज आपका शिष्य होना चाहता हू।"

"कहा का रहने वाला है ?'

'नूरचक गाव !"

'ओह, पुलपुल बाबा का गाव ?'

'हा, उस्ताद !"

'क्या करते हो ?"

"बकरी चराता हू !'

"अच्छा, कपडे उतारो, आ जाओ अखाडे मे।"

चारो तरफ देखकर बडे डर और सकोच के साथ एक एक कर सतोखी ने अपने बदन के कपडे उतारने शुरू किये—ऊपर का झुल्लदार कुरता, फिर भीतर दो कुर्ते, फिर बनियाइन, नीचे कमर की धोती, फिर घुटन्ना, फिर लगोट।

सिर्फ लगोट पहने जैसे ही सतोखी ने लहुरी पहलवान के पैर छुए और लहुरी उसे आशीवाद देने लगा, उसी समय हेगा सहित बैल लिये काली वहा आ पहुची। तपाक से बोली, 'यह कौन आ गया सौकिया पहलवान!"

और वह ठहाका मारकर हस पडी।

सतोखी मारे लाज शर्म के फटाफट कपडे पहनने लगा।

काली पास आकर बोली, "उल्लू कही का!"

सतोखी की नजर उस क्षण जिस काली की आखो मे जा गडी, बस वही ही गडी रह गइ, जैसे शहद मे मधुमक्खी फस जाये जैसे राब-गुड मे चिउटा। तब से आज तक वही चल रहा है। तभी से सतोखी और काली की कहानी शुरू होती है, सचमुच तभी से।

राम कसम बिलकुल सच्चू!

हा, तो आल्हा गात गात एक बार काली की नजर सतोखी की आख से जा मिली। सतोखी झट अपन आसू छिपाते हुए मुस्करा पडा।

आल्हा मे बेला का ब्याह। बेला के ब्याह मे इतनी जबरदस्त लडाई! सतोखी सोच रहा था भला वह कसे कहगा नटुआ पहलवान से कि वह काली से ब्याह करेगा!

नटुआ उसे मारेगा?

अरे, नटुआ पहलवान की बात छोडो। काली क्या करेगी तब? वह भी क्या मारन दौडेगी? मारने दौडेगी तो दौडे, मार लडाई होगी तो हो। बेला क ब्याह म अगर इतनी लडाई हुई है तो काली के साथ ब्याह कोई मुरई-गाजर है, साचो भला, हा नही तो!

आधी रात के बाद चकपकिया तारे जब नरकुल के ऊपर आ गए तो आल्हा बंद हो गया। सब चले गए। सतोखी उसी काठ की खमिआ के सहारे बैठा रहा। लहुरी पहलवान बोला, "अरे सतोखी, अब घर जा। घर नही जाएगा ?"

ऊ-ऊ करके सतोखी उसी तरह बैठा रहा। वह उसी तरह बैठे बैठे सो जाएगा। खमिया से उसका सिर खिसककर जिधर जाएगा, वह उसी करवट ज़मीन पर सो जाएगा।

सच, उल्लू कहीं का !

लहुरी ने कहा, "अच्छा सतोखी, घर नही जाना तो भैंस के लिए थोडा सगहा काट दो।"

बरामदे म अधेरा था। चिराग लेकर काली घर के अदर चली गई थी। लहुरी नट बरामदे के कमरे म जाकर सो गया था। उस अधेरे मे सतोखी नेसुहे पर बैठकर गडासे से सगहा काटने लगा। कुछ ही क्षणो बाद काली चिराग रखकर दरवाज़े पर चुपचाप खडी रही। सतोखी एक नज़र से काली को देखता दूसरी नज़र स सगहा काटता।

गडासा थामकर सतोखी बोला, "जा, तू सो जा न ! जा न !'

'भक्क।"

काली जब 'भक्क' कहती है तो सतोखी का कलेजा धक्क धक्क करने लगता है। आज जिस तरह स उसने 'भक्क कहा है, सतोखी के सीने म जैसे बिच्छी ने सैकडो डक मार दिए हैं। वह बोला, ' मरी कसम जा तू आराम कर !"

काली बोली, "मुझे अधेरे मे डर लाग ! अधेरे म नाही सोऊ।"

"तो चिराग ले जा न !"

'नही, सगहा काट लो, फिर जाऊगी।"

"अच्छा तो '

"नाही तो अधेरे मे कही गडासा लगि जाय !"

सतोखी ही-ही ही ही करके हस पडा। न जाने किस शक्ति स वह चौगुने वेग स सगहा काटने लगा।

"ल कट गया सगहा ! जा, अब सो जा !"

काली चिराग लिये चुपचाप अंदर चली गई। सतोखी बरामदे की खाट पर ठीक उसी जगह बैठा, जहां काली बैठी आल्हा गा रही थी। फिर उसी जगह अपना सिरहाना करके लेट गया। सतोखी के माथे में काली की बात 'मुझे अंधेरे में डर लागै अंधेरे में नाही सोऊं' घुमड़ रही थी। अरे, बाप रे बाप, इतनी पहलवान, बहादुर लड़की को अंधेरे में डर लगता है। काली अंधेरे में नहीं सो सकती। अरे, काली को किसका डर? डरते तो मरद हैं उससे। कोई हिम्मत थोड़े ही करता है उसके पास आने की। सब दूर से बतकही करते हैं—जलकर खाक होते हैं—काली-कलूटी मरद खोटी। आए कोई सामने आकर वह। हिम्मत है इतनी किसी की डरते हैं लोग, तभी तो काली का अब तक ब्याह नहीं हुआ। काली का ब्याह मानो बैला का ब्याह? लोग झूठ मूठ में उड़ाते हैं कि लहुरी पहलवान बेटी को ब्याहकर दूसरे घर विदा ही नहीं करना चाहता है। कोई ऐसा दामाद, जो उसके घर घरबैठा बैठ जाय! पहलवान तो पहलवानी करता है। कुश्ती लड़ता है। दंगल लड़वाता है। आल्हा गाता है। खाता है और सोता है। खेती-बारी, भैंस-बछेरू काली देखती है। काली के बाद दो लड़के हैं अग्गू, मग्गू,—जुड़वा, छह साल के। काली की मां चती को गठिया-बतास रोग ने पकड़ रखा है कई सालों से।

तो काली ही है सब कुछ। और काली की ही वजह से सतोखी है। दिन भर सतोखी नटुआ लहुरी के दरवाजे पर बिना कुछ खाये पीये, अनदाना के काम करता है। लहुरी जब भी पूछता है सतोखी से कि कुछ खा-पी ले तो वह दो ही उत्तर देता है 'खा पीकर आया हूं।" या 'अभी कुल्ला दातून नहीं किया हूं। घर जाकर कुल्ला दातून करूंगा, नहाऊंगा, तब '

पर काली सब जानती है। सब समझती है। किस तरह सतोखी की बकरियों को एक एक करके काली के बाप ने खाया है। जब-जब सतोखी की बकरी बकरा का कलिया बना है पहलवान के घर में, काली ने कभी नहीं खाया है। क्या क्या बहाने बनाये हैं उसने। कितनी बार बाप की मार भी खानी पड़ी है।

फागुन बीत रहा था, पर फगुनहट हवा बड़ी तेज बह रही थी उन

दिनो ।

सतोखी का बडा भाई सचित जानता है कि जब सतोखी के घर मे कुछ भी खाने को नही होता तो सतोखी अपने बडे-बडे बतन, पीतल के बटुले, बटलोई, थाल, थालिया कटोरे गाव मे लाला ठाकुर के घर गिरवी रखकर अपना काम चलाता है ।

उन दिनो जब फगुनहट हवा बडी तेज बह रही थी, सतोखी अपनी लाठियो मे से एक लाठी निकालकर ठाकुर के घर बेचने जा रहा था तो सचित ने सतोखी से कहा, "छोटू ! सुना है, तू लहुरी नटुआ के घर घरबठा बैठने वाला है ?"

सतोखी ने लाठी जमीन पर मारते हुए कहा, 'किसकी हिम्मत है, जो मुझे घरबैठा बठा ले ! हुअ ?"

' अच्छा छोटू, तू नटुआ की लडकी का अपने घर लायेगा ? '

"हा हा ब्याहकर लाऊगा ब्याहकर !"

"वाह रे वाह ! बडे बडे बहे जाय, गदहा कहै कितना पानी !"

सतोखी ने लाठी तानकर पूछा, ' ता मैं गन्हा हू, बडकू ?"

सचित ने हाथ जाडकर कहा "उसकी लडकी घर म न लाना ।"

'क्यो ? किसी के बाप का डर है ?

'हा डर है !"

सतोखी का मुह सूख गया । उसकी भूख-प्यास मारी गई । वही लाठी कधे पर ताने हुए सीधे सुलेमानपुर जान लगा । नूरचक से सुलेमानपुर के बीच कछार का वह जगल ही नही पडता था—मटरा पिलाई, दोहाद कटहरी सैनी गाव पडते थे । गाव के मुरहा मद सतोखी को देखकर कहते, "कहो भाई सीकिया पहलवान, कुर्ता के नीचे कुछ पहिन हो कि नाहीं ।"

लौडे चिढाकर भागते सतोखी कोखी औरत है बडी धोखी । काली कलूटी घसम फटी । माइ माई भूख लगी, सतोखी के घर म ऊख लगी ।'

मतलब, एक बार पूरा एक बीघा ऊख पहलवान को दे दिया था ।

कोइ कुछ कहै सतोखी को कभी कोई चिंता नही रही कुत्ते भूकें अपन वास्त हाथी जाय अपन रास्ते ।"

तो उस दिन सतोखी सीधे आकर पहलवान से बोले, "सुनो उस्ताद, काली स मेरी शादी कर दो, नाही तो इसी लाठी से मेरा सिर फोड दो। अब और नही सहा जाता। मैं घरवठा नही बैठूगा, ब्याहकर अपने घर ले जाऊगा, नही तो प्राण तज दूगा।"

पछियाव का बहना थोडा थम गया था।

लहुरी पहलवान ने कहा, "मेरी बेटी स ब्याह करके उसे अपने घर ले जाओगे? उसे सभाल सकोगे? उसकी रक्षा करोग? उसे कभी कोई तकलीफ तो नही दोगे ?"

सतोखी पहलवान के कदमो पर सिर रखकर वचन देन लगा।

पहलवान न कहा, "अच्छा, एक शत है।"

"शत मुझे मजूर है।"

"अरे उल्लू का पट्ठा, शत सुनी नही, शत मजूर कर ली।"

"हा-हा, कोई शत हा!"

लहुरी पहलवान न शत रखी कि आज आधी रात को सतोखी काली को अपने साथ लेकर अगर कछार का जगल सही-सलामत पार कर ले तो अगले दिन शादी करके वह उस अपने घर ले जाय।

सतोखी को पता था कि फागुन मास लगत ही कछार के जगल स रात म कोई नही आता जाता। फागुन स जेठ मास तक कछार के जगल मे डाकू लुटेरो का वास रहता है। फिर भी, क्या फक पडता है, सतोखी ने पहलवान की शत मान ली। काली को अपन साथ लिये हुए सतोखी ठीक आधी रात को कछार का जगल पार करन लगा। कधे पर वही लाठी। बदन पर वही झुल्लदार कुर्ता। जबान पर वही गाना।

—बिना मोती के चना पडत नाहीं।

जगल के बीचाबीच अचानक दो लटठधारियो ने उन्हे घेर लिया। लाठिया चलन लगी। सतोखी न लाठी चलाते हुए एक बार काली का मुह देखा—उसके मुह से निकला 'काली माई की जै।"

न जाने कहा की शक्ति सतोखी मे आ गई थी। जिस पर उसकी लाठी पडती वह भक से जमीन थाम लेता। दोनो की लाठिया तोड दी सतोखी ने। दोनो लट्ठधारी जमीन पर गिरे थे। सतोखी न पूछा, कौन हो तुम

लोग ? क्या चाहते थे ?"

एक ने बताया कि नटुआ पहलवान ने उन्हें भेजा था।

"क्यों ?"

काली को उसने बताया, 'सतोखी की हत्या के लिए।"

उसी क्षण काली को संग लिये हुए सतोखी सुलेमानपुर लौट आया। लहुरी पहलवान को जगाकर बोला, 'हिम्मत हो तो तुम भी आ जाओ उस्ताद, मेरी जान लेना चाहते थे, उस माफिक थुड़ी है।"

लहुरी पहलवान ने उठकर सतोखी को गदनी देकर जमीन पर पटक देना चाहा। सतोखी ने छटककर उसके कल्ले पर लाठी दे मारी। फिर दोनों में लाठियाँ चलने लगीं। पहलवान की एक लाठी सतोखी के सीने पर लगी वह गिर गया। उसके सीने पर पाँव रखकर पहलवान उसे मारने चला तभी उसके सामने काली गंड़ासा तान खड़ी।

लहुरी पहलवान अपनी उस बेटी का निहारता ही रह गया। काली की आँखों में इतना खून ! इतने आँसू !

दूसरे दिन पहलवान के दरवाजे पर बड़े धूमधाम से सतोखी और काली की शादी हुई। तीसरे पहर सतोखी अपनी पत्नी को विदा करवाकर पैदल अपने घर ले चला।

आगे आगे दौरी दफला बाँसुरी बजाते हुए दो आदमी। पीछे-पीछे दुल्हा दुल्हन—सतोखी काली।

अपने नूरचक गाँव में आकर सतोखी ने सारी भीड़ के सामने एलान किया 'सब लोग कान खोलकर सुन लें। छोटका या बड़का कोई भी हो—लाट गवर्नर भी क्यों न हो—किसी को मेरे घर आने जाने की जरूरत नहीं है। जो मेरी औरत की तरफ आँख उठाकर देखेगा उसकी आँख फोड़ दूँगा।

दुल्हन ने सतोखी के घर में आकर देखा—घर बिलकुल सूना-खाली है। घर में न कोई बरतन भाँड़ा है न कोई अन्न-दाना। एक चिराग तक नहीं है। घर के बाहर ताला लगाकर अपनी सारी लाठियाँ लिये सतोखी उन्हें बेचने गया था।

जीवन भर की कमा-कमाकर बनायी, रखी हुई कई उम्दा लाठियाँ कुल

पैंतीस रुपये मे बिकी। तल फुलेल, अन मसाला, मिठाई सब कुछ लिये हुए सतोखी आया।

घर खोलकर अंदर गया तो घर म चिराग जल रहा था। चूल्हे पर भोजन बन रहा था।

सतोखी सन्न रह गया।

"ई सब कहा से मिला ? बोल, कैसे आया सब ?" काली न अपने माथे पर से जरा सा घूघट हटाकर बताया कि तेल माचिस बडकू के घर से आया है। लकडी-कडा, बतन ललाइन ने भिजवाया है।

"मगर यहा आया कैसे ?"

काली ने आचल के कोर को दातो तले दबाकर कहा, "दीवार फादकर मैं ही गई थी।"

सतोखी के बदन म जैसे आग लग गई। वह अपन हाथ की चीजो को फेंकते हुए मारे गुस्से स बोला, "खबरदार, अगर फिर तूने इस तरह घर से पाव निकाला। काटकर रख दूगा। खबरदार, फिर कभी किसी से कुछ मागा। मार मारकर तरी हड्डी पसली एक कर दूगा। अरे तू हसती क्या है पिकिर पिकिर ! मुझे किसी से डर है क्या ! चली जा मेरी आखो के सामने से ! दूर हो जा। मुये समझती क्या है !"

काली ने बिखरी हुई चीजो को समेटकर उन्ह जतन से घर म रखा। सतोखी को भोजन कराया।

जमीन पर बिस्तर बिछा देखकर सतोखी ने कहा, "कल पलग बनाऊगा तेरे लिए, अपने हाथो स। देख ऊ रखा है बसुला, आरी, ओजार, शीशम की लकडी। रस्सी बटके रखी है।"

सतोखी ने लजाते हुए कहा, "हे रे, चिराग जलता रहेगा कि "

"भक्क।"

"भक्क क्या ?"

"अंधेरे मा डर लागे।"

दोनो बिस्तर पर सो गए। काली को झट नीद आ गई। सतोखी की आखो स नीद बिलकुल गायब थी। वह करवट बदलकर कभी अपनी दुल्हन का रूप देखता, कभी सहमा सहमा कान उचेर गाव घर के सन्नाटे मे कुछ

सुनने लगता। कितनी आवाजें, कितने चेहरे लोग बाग।

काफी रात गए काली की नीद टूटी। देखा तो बिस्तर पर 'वह' नही है। उठकर इधर-उधर ढूढा। दरवाजा बाहर से बद है। दीवार फादकर काली बाहर आई। देखा, सतोखी कधे पर लाठी लिये अपने घर के चारो ओर पहरा दे रहा है।

काली ने चुपके से पति को पकडकर कहा, 'किसके लिए पहरा दे रहे हो?"

'बहुत डर लग रहा है रे!"

'अब कैसा डर?'

"भक्क!'

सतोखी का हाथ पकडे काली अपने घर मे आई। भीतर से घर बद कर लिया। बोली, 'ह हो, घर मोहब्बत है, जिसकी कुडी भीतर से बद होती है।"

"चिराग बुझा दू?"

"नाही अधेरे मा डर लागै हो।'

आनेवाला कल

पिछले कई दिनों से काले, भूरे बादल गरजकर रह जाते। आज दोपहर से वर्षा हुई थी। घनघोर वर्षा। आँधी पहले आई थी।

महावीर को हलका-सा बुखार था। भीतर आगन के बरामदे में खाट पर मुह ढापे वह पड़ा था। अचानक उसे लगा कोई धड़ाक से बाहर का दरवाजा खोलकर अदर घुसा है। सिर उठाकर उसने आगन में देखा, वर्षा अब बिलकुल थम गई थी और आगन के पार बरामदे में कोई छिपा खड़ा था।

'कौन ? कौन है ?"

सिर्फ एक मीठी-सी हसी सुनाई दी।

'कौन है रे ?"

वह दौड़कर आगन में चली आई। वर्षा से बिलकुल सराबोर थी। रह रहकर हस पड़ती। लाज के मारे कुछ बोला नहीं जा रहा था।

'क्या बात है रे, गगा ?'

"कछू नाहीं।'

फिर वही चहक-चादनी सी हसी। वह आगन में जैसे नाचती हुई ऊपर देखती, फिर महावीर की ओर तकने लगती। वह खाट पर उठकर बैठ गया था।

'क्या है, बताती क्यों नहीं ?'

'आज बिलकुल सराबोर हो गई।"

"वह तो देख रहा हू।"

"आज तोहार चेहरा मोरे सामने "

महावीर चुप रह गया। वह बडी गभीर नजर से गगा को देखने लगा। पूछा, "रामनाथ कहा मिला ?"

"बस, हम दोनो आज " यह कहकर वह भागने लगी। महावीर उठ खडा हुआ।

"कहा है वह ?"

वह बच्चो की तरह बोली, 'तू ही तो कहे रह्यो, सब समान हैं, बराबर है।"

"पर "

"हमे केहू के डर नाही बाय, हा !"

गगा हवा के तेज झोंके की तरह बाहर निकल गई। अपने पीछे महावीर को गभीर बनाकर। एक ओर उसका दिल और दिमाग तेज सुगध से भर रहा था, दूसरी ओर वह तडप रहा था। उसका बुखार गायब था।

महावीर क्षत्रिय युवक था। घर मे बडे भाई भाभी और विधवा मा थी। वह पूरा गाव जवार जात पात छूत अछूत, नीच-ऊच के बधनो मे बुरी तरह जकडा हुआ था। लोगो के अधविश्वासो और परपरागत जडताओ को महावीर जन्म से लेकर आज तक किसी तरह झेल रहा था। बी० ए० तक पढकर, फिर भी गाव म रहकर खेती करने पर उसे अपने घर-परिवार, नात रिश्तेदारो से लेकर पूरे गाव जवार तक की बातें सुननी पडी थी।

पिछले वर्ष की घटना है। गाव के ब्राह्मण ठाकुरो ने मिलकर चमार टोला पर धावा बोला था। दो घरो मे आग लगानी चाही थी। अकेले महावीर ने सवर्णो की उस बर्बरता और अन्याय का विरोध किया था। हरिजनो के साथ उसने कहा था, 'ये भी हमारी तरह मनुष्य हैं। इन्हे बराबरी का अधिकार है। ये मेहनत मजदूरी करने वाले लोग उन सवर्णों, ऊचे लोगो से कही ज्यादा श्रेष्ठ हैं। सब समान हैं। अब इन्हे कोई दबा नही सकता।'

महावीर की इन बातो का हरिजन टोला की युवती गगा पर यह असर

पडेगा, उस इतनी कल्पना नही थी। गगा पदारथ शुक्ल के लडके रामनाथ से प्रेम कर बैठी है, इसका अजाम क्या होगा, वह सोचकर काप गयी। इसी तरह की कई घटनाए उसके सामने कौंध गइ। कोई जहर खाकर मर गई। कोई पेट छिपाने के लिए कुए म कूद पडी। कोई मारपीट सहकर बह गई। किसी को गाव से ही उजडकर चला जाना पडा

रात को महावीर एकात मे रामनाथ स मिला। सीधे स्पष्ट ढग स पूछा 'सच सच बताओ—गगा से तुम्ह प्यार है? देखो, अब इसमे किसी तरह के सकोच की गुजाइश नही। बताओ।'

उसने स्वीकार किया, 'हा, है।"

"गाव की पचायत म इसे कह सकते हो?"

'हा, पर लेकिन "

"वक्त आने पर गगा से शादी कर सकते हो?"

"हा, पर सुनो लकिन "

"पर क्या?'

"हिम्मत नही पडती। न जान क्या डर लग रहा है। दादा मुझे घर से निकाल देंगे और "

रामनाथ का सारा मुह पसीने से भीग गया। उसके हाथ कापने लग। महावीर ने उसका दाया हाथ पकडकर कहा, 'यार, डरपोक भी कही प्यार करता है! मुझस भी बात करने म इतना डर?"

उसक मुह से निकला, 'महावीर भइया मुझे तो लगता है, यह प्यार-मुहब्बत बहुत कमजोर बना देता है।"

'पर कायर नही।"

रामनाथ मुह देखन लगा। कुछ देर बाद जस हिम्मत बटोरकर बोला, "दादा इतने गुस्सल हैं! बेरहम, निदयी हैं—गगा को मारकर उसकी लाश तक लापता करवा देंगे।"

महावीर एकटक उसका मुह निहार रहा था। रामनाथ सिर झुकाये कहता जा रहा था "दादा यह कभी नही बर्दाश्त कर सकत कि उनका एकलौता लडका गगा चमाइन स शादी करे। हा, वह रखल रख सकता है। चोरी छिपे जो चाहे कर सकता है। इस गाव मे यही तो होता रहा है।

चमाइन, शूद्र औरतें, जवान बहुए, लड़किया बडकवा के घरो मे काम काज करने आती रही हैं। बडकवा लोग जो चाहे उनके साथ करते रहे हैं।"

महावीर ने पूछा, "अगर तुम्हे इतना भय था और तुम इतने कमजोर हो तो गगा से इस तरह सबध क्यो जोडा ?"

"इसका मैं कोई जवाब नही दे सकता।"

तुम दसवी कक्षा तक पढे हो, जवान हो स्वस्थ हो।"

"हा, सब हू, पर "

पर क्या ?"

"किसी तरह का अन्याय नही चाहता।"

महावीर को हसी आ गई। वह उसे अपने सग लिये घर लौट आया।

सावन के दिन थे। आमने सामने खाट पर बैठकर महावीर ने कहा, 'जो दे सकने लायक नही उसे किसी से कोई सबध जोडने का अधिकार नही।'

रामनाथ की आखो से आसू बहने लगे। रुधे कठ से वह बोला, 'मैं गगा के बिना नही रह सकता। वह नही तो मैं नही।

' पर इसके लिए उपाय करोगे या '

रामनाथ सिर झुकाये चुप था।

तीसरे दिन रामनाथ सुबह-सवह महावीर से मिला। बोला, "अगर तुम मेरी एक मदद कर दो तो आगे मैं हिम्मत कर जाऊगा। तुम मेरे दादा से इतना कह दो कि गगा के बिना अब रामनाथ नही रह सकता।"

"ठीक है दादाजी कह देगे कि गगा को रखैल रख ला।"

रामनाथ बोला, "नही उन्हे बता दो कि रामनाथ गगा से शादी करेगा।"

ठीक है, मैं दादा से कह दूगा।"

कई दिन बीत गए। दादा से किसी ने कुछ नही कहा। और एक दिन गाव मे खबर फैली कि महावीर शहर मे नौकरी करने जा रहा है।

गगा ने पूछा, क्यो भइया इ बात सही है कि तू हमे छोड के शहर जाइ रहे हो।"

'हा सही है। कल ही जा रहा हू।

"भला क्यो ?"

महावीर ने हसकर कहा, "ताकि तुमको वह मिल जाय । उसे मिल जाव ।"

"सच्ची !"

'हा, बिलकुल सच्ची !"

रामनाथ के सारे प्रश्नो के उत्तर मे महावीर ने सिर्फ इतना कहा, 'दोस्त, बुरा नही मानना । मेरी इस बात पर ध्यान देना । हर सुनने वाला यह जानना चाहता है कि कहने वाले की कीमत क्या है !"

रामनाथ ने कहा, "भाई तुम्हारी इस गाव मे कीमत है !"

"पर इतनी नही है कि तुम्हारी उतनी बडी बात मै तुम्हारे दादा से पूरे विश्वास के साथ कह सकू ।"

गगा से विदा होते हुए उसने रामनाथ से कहा, "जब तक मै न लौटू, गगा से उस तरह मिलना जुलना नही । मै जल्दी लौटूगा, तुम्हे खत दूगा ।"

पूरा साल बीत गया, शहर से महावीर का कोई खत पत्र नही आया । बस, यही खबर इधर उधर से बराबर मिलती रही कि महावीर कानपुर शहर मे किसी मिल मे काम कर रहा है बडी इज्जत और तरक्की हासिल की है ।

अपने हालात और गगा की परिस्थितियो से विवश होकर रामनाथ एक दिन कानपुर मे महावीर के पास आ पहुचा । इस नए महावीर को देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया ।

दिन म महावीर कपडे की मिल मे काम करता है । शाम के वक्त कॉलेज जाता है पढने । रात को अपने हाथ से भोजन बनाता है । किराये की एक तग कोठरी म रहता है । रात को भोजन करके ठीक दस बजे मिल-मालिक की एकलौती लडकी को जो मिल की एक सचालिका है कुछ सहायता करने जाता है ।

एक दिन रात को महावीर ने रामनाथ से कहा, 'ये छह हजार रुपये मैने तुम्हारे लिए बचाकर रखे हैं । ये रुपय लेकर गाव लौट जाओ । तुम्हारे बाप दादा का गाव मे जो टूटा शिवाला है इन रुपयो से उसे नया बना दो ।"

रामनाथ कुछ रुककर बोला "तुम्हारी इतनी गाढ़ी कमाई से उस टूटे हुए मंदिर का उद्धार ! मेरी समझ मे नही आया ।"

अच्छा, तुम क्या करना चाहोगे इन रुपयो से ? समझो य तुम्हारे हैं ।"

रामनाथ के मुह स निकला, "इन रुपया से गाव के चमारटोला म सबके नए घर बन सकत हैं—ऐस घर, जहा वे इसान की तरह रह सकें ।"

महावीर ने कहा, "आज लगा, तुम सचमुच गगा को प्यार करते हो !"

उसकी आखें भर आइ। उसन महावीर का हाथ पकडकर कहा 'अब गाव चलो । दादा से मेरी वह बात कहो ।"

एक अजब खामोशी छा गई। कुछ क्षण बाद महावीर ने वह खामोशी तोडी, "जो बात मैं तुमसे तब नही कह पाया, आज कहता हू सुनो। किसी दूसरे के कहन स कही कुछ नही होता। अपनी बात स्वय कहनी होती है। कोई किसी की मदद नहीं कर सकता। खुद अपनी मदद करनी होती है। मैं जस जैस तुम्हारी मदद के लिए रुपये बचा बचाकर रखता रहा, वैस-वैस मेरे सामन यह साफ होता रहा—यह सब तुम्हारा भ्रम है। तुम हो कौन ? क्या हो ? कोई किसी की मदद नही कर सकता। कोई किसी की बात नही कह सकता। सबको अपनी-अपनी जिम्मेदारी खुद पूरी करनी होगी। अपने-अपने विश्वास क लिए खुद मरना जीना होगा।"

पूरे छह हजार रुपय उस तग कोठरी क फश पर बिखरे पडे थ। महावीर शाति स सो गया था। रामनाथ की पलक तक नहीं झपी थी। उसकी आखो म गगा, दादा महावीर की तसवीरें तैर रही थी।

कई दिनो बाद महावीर ने अचानक देखा, सडक बनाने वाले मजदूरो के साथ रामनाथ काम कर रहा है।

कुछ दिना बाद एक दिन देखा—रामनाथ रिक्शा चला रहा है। उस दिन उसे रोककर महावीर न कहा 'मैं कल गाव जा रहा हू। मर साथ चलो। अब मैं तुम्हारे दादा से '

रामनाथ न तत्काल रोकन हुए कहा, नही अब नही। तुम चलो।

मैं अगले महीने के अंत में आऊंगा।"

गांव में दादा के दरवाजे पर पंचायत बैठी थी। दादा चमारों पर आग-बबूला थे। महावीर चुपचाप बैठा था। उसके कानों में दादा की जहरीली बातें आग बरसा रही थीं।

अभी कल ही रामनाथ गांव लौटा है। सबसे पहले महावीर ने देखा। फिर सबकी आंखें उठ गईं गंगा के साथ आते हुए रामनाथ की ओर। पंचायत के सामने उसने अत्यंत विनम्र पर निश्चित स्वर में कहा, 'दादा, मैं गंगा का हूं। गंगा मेरी है।'

'क्या कहा ?"

दादा के क्रोध-भरे स्वर कांपे। रामनाथ ने फिर थमे हुए स्वर में कहा, "मैं और गंगा ''

उसकी लडकी

सरकारी जीप से उतरकर माधवी न अपने फ्लैट की ओर देखा। पहली मजिल के उस फ्लैट के बरामदे मे वही खडी दिखी।

चदी तेरह साल की लडकी—फ्राक पहन। माधवी के घर म रहन वाली एक लडकी। जब भी माधवी चदी को इस तरह बरामदे मे खडी बाहर निहारती हुई पाती है, उसे निहायत बुरा लगता है। उसका चेहरा तमतमा जाता है। क्योकि बार-बार इसके साथ ही अतीत का वह बेहूदा दृश्य भी उसके सामने खिच जाता है। पुलिस का साथ लिये माधवी न उस मुहल्ले के कोठे पर 'रेड' किया था। कमरे मे सितारा के अलावा और कोई नही मिला था। न कोई ग्राहक, न आसपास कोइ दलाल। माधवी को सितारा ने जबरन उस दिन अपने सामने बिठा लिया था। इसी चदी को, तब यह छह साल की रही होगी, इसके बालों मे चोटी करते हुए तब सितारा ने कहा था 'इसे देखकर कोइ कहता कलमुही कोई कहता करमफूटी—और यह धाम, डर के मार आज तक इस कोठे से बाहर नही गई। आज यह छह साल की हो गई। जिस दिन यह जनमी थी, उसी दिन इसके अब्बा तेज भागती हुई रेलगाडी से कूदकर मरे थे।

माधवी के मुह से तब पूरी कहानी सुनकर सिर्फ यही निकला था, 'सात रुपये मे शोहर खरीदने से यही होता है। बता देख न, तुझे क्या मिला? भगवान जाने, हमारे समाज मे औरतें इतनी बेवकूफ क्यो होती हैं?'

न जाने किस बात पर सितारा ने अपनी उस बेटी चंदो को गोद में बिठाकर कहा था, "जिसके दाम न लगें, उसे बेशकीमती कहते हैं। आप तो सरकार की इतनी बड़ी अफसर हैं, हमारा कल्याण चाहती हैं, आपसे किसका क्या छिपा है ? आप यहां सारे कोठों की छानबीन कर देखिए— कोई रंडी पतुरिया ऐसी है, जिसे मेरी तरह यह अमूल्य धन मिला हो।"

यही अमूल्य धन यह चंदी है—बदमाश बेशरम ।

फ्लैट का दरवाजा खोलकर चंदी किवाड़ के पीछे छिप गई थी। गुस्से से खींचकर उसे दो झापड़ मारे—बिलकुल उसके मुंह पर। होंठ से खून बह निकला।

'जा मुंह साफ कर। खड़ी-खड़ी क्या देख रही है ?"

सिसकती हुई वह अंदर चली गई। तब तक माधवी के दोनों बच्चे रतन और मीनू अपने-अपने कमरे से दौड़े हुए आए मां के अंक से लिपट गए। माधवी कई दिनों के दौरे के बाद घर लौटी थी। ड्राइंग रूम में बैठकर आठ साल की मीनू और तेरह साल के रतन को चूम चूमकर प्यार करने लगी। मीनू के लिए कपड़े। रतन के लिए फाउंटेनपेन, मिठाई।

ट्रे में चाय लिए चंदी आई। टेबल पर रखकर मेम साहब द्वारा लाये हुए सामान की ओर निहारने लगी।

'नालायक कहीं की, इत्ती देर से चाय ले आई।' चंदी का ध्यान मीनू के लिए आए उन कपड़ों पर था।

'जा, बाथरूम ठीक कर, नहाऊंगी। जा, खड़ी क्या देख रही है ? नालायक कहीं की, तेरी आदत है हर वक्त घूरते रहने की।"

चंदी जाने लगी कमरे से बाहर। माधवी ने बढ़कर उसके कान उमेठ लिये—वह दर्द के मारे फर्श पर बैठ गई।

बता, बाहर बरामदे में खड़ी क्या देख रही थी ? किसे निहारने के लिए तू बाहर खड़ी होती है ? कित्ता बार तुझे मना किया है बेहया की तरह बाहर मत खड़ी हो पर बेशरम तू "

अचानक उसी समय कमरे में माधवी के पति सतपाल का प्रवेश हुआ। चंदी को मारने के लिए उठा हुआ हाथ रुक गया।

चंदी भाग गई।

चाय बनाते हुए माधवी ने सतपाल से कहा, "इस बार मेरा दौरा बहुत सफल रहा। कानपुर और मेरठ मे जितने 'रेड' हुए सब में लडकिया पकडी गइ। एक रडी के कमरे म सात भोली-भाली लडकिया बरामद हुइ। सबको वहा से निकालकर मैंने महिला रक्षा भवन मे रखवा दिया है। वहा उन्ह दस्तकारी का काम सिखाया जाएगा। फिर अपनी-अपनी जिंदगी मे लग जाएगी। कानपुर मे कुल सोलह ऐसी लडकिया पकडी मैंने, जिन्ह नाजायज तरीके से तीन अलग-अलग मकानो मे छिपाकर रखा गया था। कुछ लडकिया बिहार के राची इलाके से खरीदकर लाई गई थी। कुछ मध्य प्रदेश के मालवा इलाके की थी। कुछ को नारी निकेतन

अचानक माधवी को याद आया य सारी बातें वह बच्चा के सामने क्यो कह रही है? इनका बुरा असर बच्चो पर पड सकता है। तत्काल बच्चो को लेकर कमरे से बाहर निकल गई।

थोडी-सी देर बाद नहा धो बिलकुल सजी धजी माधवी डाइग रूम मे लौटी। तब तक पति महोदय चुपचाप बैठे चाय पी रह थे।

आत ही माधवी बोली 'तुम्ह मना करना चाहिए मुझे, जब मैं तुमस व सारी बातें बता रही थी तुम या तो बच्चा को किसी बहान कमरे से बाहर कर देत या मुझे ही टोक देत।'

सतपाल न एक घूट चाय पीकर कहा, "मैंने तुम्ह जब भी किसी बात के लिए टोका है, तुमने हमेशा बहुत बुरा माना है।"

'फिर भी तुम्ह टोकना चाहिए। यह तुम्हारा फज है।"

मतलब मैं घर मे खामखाह महाभारत शुरू करू।"

"इसम महाभारत की क्या बात है?

कमर म एक चुप्पी छा गई। सतपाल न कहा, तुम समाजशास्त्र, मनोविज्ञान की इतनी जानकार हो तुम्हार इतन सारे लख पत्र-पत्रिकाओ म छपत हैं, तुम जगह जगह नारी-कल्याण, नारी मुक्ति शिशु मनोविज्ञान पर इतने सारे भाषण दती हो इतने सार काय करती हो, मैं तुम्ह क्या समझाऊ?

माधवी न गम्भीर मुख स कहा, 'तुम समझ नहीं सकत, मुझ टोक तो सकत हो!'

"दोष उसे जाता है जो नासमझ और अज्ञान हो।"

"अच्छा, चुप रहो, मैं बहुत थक गई हूं।"

यह कहकर माधवी आंखें मूंद वहीं सोफे पर लेट गई।

"चलो, बेडरूम में आराम करो न।"

लेटी-लेटी माधवी बोली, "इस लड़की चंदी को अपने घर में लाकर मैंने गलती की।"

"गलती क्या की?"

"गलती की।"

सतपाल ने कहा, "तुम्हारा तो विश्वास है अच्छी अनुकूल परिस्थिति में इंसान अच्छा बेहतर होता है। जैसी स्थिति होती है, वैसा ही होता है इंसान। अगर बुरी गंदी परिस्थिति में लड़की पली है तो वह गंदी-बुरी होगी। सारा कुछ आर्थिक सामाजिक परिवेश होता है। इंसान अपने परिवेश की उपज है। परिवेश का गुलाम है।"

"हां यह बिलकुल सच है।"

सतपाल के मुंह से निकला "सच केवल प्यार है। जिस बच्चे को प्यार और विश्वास नहीं मिला उसे कितनी भी अच्छी सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति में रखा जाय, वह कभी भी अच्छा, बेहतर और स्वस्थ नहीं होगा।"

"तुम कहना क्या चाहते हो?"

सतपाल चुप था।

"चंदी को इस घर में किस चीज की कमी है?"

सतपाल कमरे से उठकर चुपचाप चला गया। कपड़े बदलकर अपने कमरे में कुछ देर आराम करता रहा। चंदी किचन में बर्तन धो रही थी। दोनों बच्चे बाहर लान में बैडमिंटन खेल रहे थे।

दरवाजे पर कालबेल बजी। सतपाल ने जाकर दरवाजा खोला। मिस राधा शर्मा, माधवी की स्टेनो पर्सनल सेक्रेटरी थी। बाहर के बरामदे वाले कमरे में बिठाते हुए सतपाल ने कहा, "साहब आराम कर रही हैं, थोड़ी देर यहीं इंतजार कीजिए।"

मिस शर्मा ने बताया—कोई जरूरी चीज लिखवानी है उन्हें।

महिला कल्याण समिति की बैठक है, बाहर से महिला सोशल वर्कस आ रही हैं।

सतपाल वहीं अलग कुर्सी पर बैठा उस दिन का अखबार पढ़ने लगा। मिस शर्मा अपने लंबे नाखूनों पर पालिश करने लगी।

थोड़ी-सी देर बाद माधवी ने आकर मिस शर्मा को 'डिक्टेशन' देना शुरू किया "नारी कल्याण बिना मानवता सम्भव नहीं। जब तक कहीं एक भी नारी का शोषण, दमन, असमानता, अन्याय है तब तक मानव विकास नहीं हो सकता। विकास केवल स्वतन्त्रता और समानता में ही संभव है। लेकिन सच्ची स्वतन्त्रता की कल्पना स्वतंत्र समाज के बगैर असंभव है। स्वतन्त्रता के मतलब हैं, बल्कि उसके प्रमुख तत्त्व हैं शोषण और दमन से स्वतन्त्रता..."

सतपाल से वहां और आगे बैठा न गया। उठकर वह फ्लैट से बाहर सड़क पर घूमने लगा। अचानक उसे एक बात पकड़ में आई—विचार और व्यवहार में आज जो इतना अंतर है, वही है मूल कारण सारे शोषण और अन्याय का। बातें इतनी ऊंची ऊंची और कर्म इतने छोटे, व्यवहार इतने अन्यायपूर्ण और खासकर उसी के द्वारा, जो अन्याय, शोषण, पतन के खिलाफ लड़ रहा हो। तभी सतपाल के हाथ एक नई चीज लगी—यह तो नौकरी है, लड़ाई कहा है? लड़ाई नौकर नहीं लड़ता, वह उसकी बातें करता है। और केवल बातें करने वाला अपने व्यवहारों से वही अन्याय वही शोषण करता है जिसके खिलाफ उसे होना चाहिए।

रात घिर आई। सतपाल चुपचाप घर लौटा तो पाया कि माधवी किचन के बाहर खड़ी चन्दी को बेतरह मार रही थी। एक बार तो उसका मन हुआ कि वह माधवी से आज साफ-साफ कह दे कि वह चंदी को ले जाकर उसी कोठे पर छोड़ आए। पर तभी उसे याद आया—चंदी की मां सितारा भी अब जिंदा नहीं है। वह कोठा भी नहीं है जहां ऐसी अभागिन लड़कियों को पनाह मिलता था। वहां अब उस पूरे मुहल्ले को तोड़कर नारी कल्याण का एक बहुत बड़ा कार्यालय, रिसर्च सेंटर और उद्योगशाला खुल गया है। दूसरी बात एक यह भी तो—माधवी एक वैसी सितारा बाई की लड़की चंदी को अपने घर अपने स्वस्थ परिवेश में

रखकर उस पर यह प्रयोग कर रही है कि जन्मजात कुछ नही होता, सब कुछ होती है परिस्थिति। चदी को वह सस्कारयुक्त, स्वस्थ, अच्छी लडकी बनाकर समाज को देगी। सतपाल चुप रह गया।

पहले भी ऐसे अनक क्षण आए थे, पर वह तब भी इसी तरह चुप रह गया था। उसके मन मे कही यह विश्वास बना रह जाता है कि चदी का अतत कल्याण ही होगा।

दिन को चदी पास ही के एक स्कूल मे पढने जाती है। घर पर केवल ऊपर के ही काम करती है। खाना बनाने के लिए आया आती है। बतन माजने के लिए महरी आती है। सतपाल एक फम मे ऊचे पद पर है। घर मे किसी चीज की कोई कमी नही है। चदी पर माधवी का विशेष ध्यान रहता है। उसे खाने-पहनने की कभी कोई कमी नही रही।

पर उस किस चीज की कमी है, जिसके लिए वह हमेशा इस ताक मे रहती है कि फ्लैट म कोई न हो। चदी बाहर बरामद म खडी होकर दूर-दूर तक आन-जान वालो को देख, निहार। वह भी मीनू की तरह जहा चाह जाय, दौडे, खेले। उसकी भी सखिया, सहलिया हो।

घर मे चदा मीनू का प्यार है। पर चदी रतन से डरती है। रतन ने जब भी चदी को बाहर खडी सडक निहारते हुए देखा है, तब तब उसने मा से शिकायत की है और चदी को इसके लिए किसी न-किसी तरह की सजा मिली है।

मीनू और रतन को चदी के बारे म पता है कि वह कोई अनाथ लडकी है जिसका पालन पोषण उनके घर मे हो रहा है। चदी शरीर से स्वस्थ है, सुदर है। अपनी उमर से चार साल बडी लगती है। पिछले दिनो मा ने चदी को एक साथ तीन साडिया लाकर दी है और कहा है—आज से तुम फ्राक नही य साडिया पहनोगी और सदा करीन स आचल ढककर रखोगी।

एक साल बाद की बात है। माधवी कही बाहर दौरे पर गई थी। सतपाल तीना को सग लिये हुए रात को सनीमा देखने गया था। रतन

के पास बैठी चदी को न जाने क्या हुआ था कि वह अपनी सीट स उठ कर हाल की दीवार के पास जा खडी हुई थी। सतपाल ने फिर उसे अपनी सीट पर बिठाकर खुद रतन के पास बैठा।

"क्या हुआ बेटे चदी यहा से उठ क्यो गई ?"

रतन बोला, "पता नही बडी शैतान है अपने आप को दिखाने के लिए उठकर वहा चली गई।" घर आकर सतपाल ने चदी से पूछा था। पता चला रतन चदी की जाघ पर हाथ फेर रहा था।

पिता ने बडे प्यार से बेटे को समझाया था कि चदी तेरी बहन है। उसके साथ तुम्हारा यह व्यवहार अनुचित है। तुम्हें उससे माफी मागनी है। रतन ने पिता के सामने चदी स माफी माग ली थी पर पीठ पीछे रतन ने चदी को धमकाया था कि फिर कभी पिता से कुछ बताया तो मुझसे बुरा कोई न होगा।

तब स जाने अनजाने उस घर के दो भाग हो गए थे। एक भाग मे सतपाल चदी और मीनू और दूसरी ओर माधवी और रतन।

गर्मियो म दिन बीत गए। दीवाली का त्योहार आया था। रात को पूरे फ्लैट म दीये जल रहे थे। माधवी बेडरूम स किचन की ओर जा रही थी, तब तक अचानक उसे बाथरूम म एक अजीब आहट हुई। बाथरूम का दरवाजा बद हुआ था। धक्का देते ही दरवाजा खुल गया। बत्ती जलाई तो देखा रतन अपनी बाहो म चदी को जकडे हुए है। माधवी की आखो म आग लग गई। चदी को खीचकर अपने कमरे म ले आई और लगी मारने पहले हाथो स। फिर अपनी चप्पल स।

सतपाल ने दौडकर माधवी को पकडना चाहा, पर माधवी पर जैसे कोई भूत सवार था। चदी का मुह रतन ने भीच रखा था। माधवी चीख रही थी "आज इस रडी का खून कर दूगी।

सतपाल ने पूरे बल से माधवी को पकडकर कहा "कसूर तुम्हारे बेटे का है इस निर्दोष का नही है तुम्हारा न्याय ? जिस स्वार्थ सम्मानता

और न्याय की बात करती हो, वह कितना झूठ है, देख लो !"

"चुप रहो।"

माधवी की चीख पूरे फ्लैट में गूंज गई। आस पास के लोग दौड़े आए। माधवी ने संयत स्वरों में सबसे कहा "डिनर सेट था, टूट गया।"

सुबह हुई। चंदी फ्लैट से गायब थी। माधवी ने चैन की सांस ली—बला टली। ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।

कुछ महीने बाद माधवी ने सहारनपुर में 'रेड' की। उस 'रेड' में कई लड़कियां गिरफ्तार की गई। उसी में एक थी चंदी।

उसने हंसकर कहा था, "मेम साहब, सलाम !"

आशका

'तुम लडकी को देख रहे हो न ?'

'हा, देख रहा हू।"

'कब से ?'

"पिछले दो सालो से।"

'कैसी लगती है ?"

'बहुत सुदर, परम आकर्षक पर रहस्यमयी।"

पर रहस्यमयी क्या ?'

"वह कुछ बोलती ही नही। डर लगता है कही उलटा पुलटा न हो जाय।"

'पर वह तुम्हें देखती है।"

'मैं भी उसे निहारता हू। हम दोनो एक-दूसरे को देखते हैं।"

"कभी पास नही गए ? बातें नही की ?'

'कैसे जाऊ पास ? क्या करू बात ?"

"जो मन मे है।'

'जो मन में है। मन म क्या है ?"

यही मन म लेकर उसने उसे पहला पत्र लिखा, पर कोई उत्तर न मिला। दूसरा लिखा फिर तीसरा और चौथा तो खुला स्पष्ट प्रेम पत्र था। उसके जवाब म उसे एक मुस्कान मिली।

उसी मुस्कान म मगर गहरि माहिनी म उसे लगा पत्नी यार पर घे

पिछवाडे रास्ते के मोड पर मिला। वह आशका से भरा हुआ था। वह भी कम आशकित नही था। पता नही क्या हो, वह कैसा हो, घर कैसे निकले ! मोहिनी प्रोफेसर साहब की बडी लडकी है। एम० ए० मे पढ़ रही है। बी० ए० मे प्रथम आई थी। रोहित बी० ए० फेल होकर अपने पिता की दुकान पर बैठता है। फार्मेसी—अग्रेजी दवाइयो की दुकान।

दोनो के पास इतनी फुर्सत बेकार का समय नही है। पर राधेबाबू पूछते हैं, "आगे क्या हुआ ? बात कहा तक बढी ? उस पढाई से फुर्सत नही। घर के कामकाज स छुटकारा नही। इस दुकान स उतनी छुट्टी नही, ऊपर से बदनामी का डर, पिताजी क्या कहेंगे ? मुहल्ले वालो स क्या जवाब दिया जाएगा।" राधेबाबू कहते हैं जो दूसरो के कहने से डरता है, वह जिंदगी मे क्या करेगा ? बदनामी तो प्रेम का मूल धन है। वही तो शक्ति देता है डर, आशका फिर क्या है ? वही ता झूठ है, जिसे मिटाकर आदमी मनुष्य बनता है। राधेबाबू अपने प्रेम की कितनी कहानिया कहते हैं। जब तक आदमी प्रेम कर खुद अपनी कहानी का हीरो नही बनता, तब तक जिंदगी ही क्या है। जिंदगी का मतलब ही है प्रेम कर अपनी नजर म और प्रेमिका की नजरो मे हीरो बन जाना।

एक दिन रोहित न राधेबाबू स कहा, 'प्रेम म तो बहुत समय लगता है। कितना धीरज चाहिए इसमें। आपने यह सब कैसे किया, राधेबाबू ! एम० ए० पल पल से किया। वकालत की, और इतने सफल भी हुए।" राधेबाबू ने गुरुमन्त्र बताया, 'प्रेम की डोर होती है बस इस प्रेमिका के ऊपर फेंक देनी होती है। वह डोर फिर अपने आप लता की भाति फलती-फूलती रहती है। बस, कभी कभार, हफ्ते मे कम स कम दो बार उसमे थोडा जल दे देना जरूरी है। वरना सूख जाने का डर बना रहता है। इसमें तीन चीजें जरूरी हैं—पहला धन, दूसरा समय, तीसरा स्थान। दोनो का मिलाकर ये तीनो चीजें तुम दोनो के पास है। अब साहस और चतुराई की दरकार है। वह तो तुम दोनो ने दिखा ही दिया है। बस उसको थोडा और आगे बढने की जरूरत है।

और एक दिन रोहित ने पूरे विश्वास और उत्साह के साथ मोहिनी के सामने खडे होकर आत्म निवेदन किया 'तुम्हें पाना चाहता हू। तुम्हारे

बिना मुझसे रहा नही जाता। तुम्हे पता है मेरे मन मे क्या है ? मुझे पता है, तुम्हारे हृदय मे मेरे लिए क्या है। मैं एक अच्छा व्यक्ति हू, तुम्हे कभी धोखा नही दूगा।"

मोहिनी अपलक उसे देखती रही, फिर मुस्करायी और धीरे धीरे उसके चेहरे पर भय छा गया। वह बिना कुछ बोले वहा से भागने लगी।

रोहित ने बढकर उसका दाया हाथ पकड लिया। उसने कापता हुआ हाथ छुडा लिया। अजब तीखे स्वर मे बोली, "खबरदार, मुझे जो फिर छने की कोशिश की।"

' आखिर क्यो ?"

"चुप रहो !"

' तुम डरती हो ?"

' कुछ नही।"

' तुम मुझसे प्यार नही करती ?"

प्यार क्या होना है ?"

' प्यार माने प्यार।"

"सुक्षम वह नही है।'

'क्या ?"

वह वहीं ठगा सा देखता खडा रह गया। वह तेज कदमो से चली गई। अगले दिन रोहित को मोहिनी का लिखा हुआ एक पत्र मिला। उसकी पक्तिया थी—'बचपन स लेकर अब तक मैं जो कुछ देखती और अनुभव करती रही उसका सार तत्त्व यह है कि यहा लडकी, स्त्री, औरत केवल एक वस्तु पदार्थ के रूप मे देखी और जानी जाती हैं। यहा कहीं भी वह भाव वह सबध बोध नहीं है, जिस रोमास या प्रेम कहा जाय। वह मर गया है होटलो मे, सडकों पर, राह और गलियों म पार्टिया और आपसी मेल मुलाकातो म। तुम कभी भी मुझमे मिलने, पत्र लिखने की आगे कोशिश न करना।

रोहित ने यह पत्र राधेबाबू को दिया। राधेबाबू ने वचन दिया कि वह सच्चाई का पता लगायेंगे। सच्चाई यह नही है जो मोहिनी ने लिखा है। सच्चाई कही गहरी छिपी होती है, उसका पता उस खुद नही होता

जो इस तरह की बातें लिखता है।

राधेबाबू ने कई उपाय किए कुछ टोटके-टोने भी किए और कराए, पर कोई सफलता न मिली। उन्होंने फाइल बंद कर दी और फैसला दिया यह 'केस होपलेस' है।

रोहित अब दुकान नहीं जाता। भीतर ही भीतर वह कुछ बीमार-सा महसूस करने लगा। वह अक्सर सोचता उसे जिस बात की आशंका थी, वही हुआ।

मार्च के शुरू के दिन थे। आसमान में बादल छाए हुए थे। पिछली रात से रोहित को थोड़ा बुखार हो आया था। शाम के करीब साढ़े सात बजे होंगे। रोहित अपने अलग कमरे में कंबल ओढ़े पड़ा था। सहसा कमरे में एक युवती का प्रवेश हुआ। रोहित उसे देखकर हैरान हो गया।

"आप कौन?"

"पहचाना नहीं, मेरा नाम ममता है। कभी आपने मुझे भी प्रेम-पत्र लिखे हैं। मेरे जवाब भी आपको मिले हैं। आपने ही अचानक खत देना बंद कर दिया। मैं फिर भी आपको बराबर खत लिखती रही। आज मैं खुद मिलने चली आई, सुना है तुम बीमार हो!"

रोहित चुपचाप पलंग पर बैठा था। वह कुर्सी खींचकर उसके सामने बैठ गई। पूरे कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। वही बोली, "अब अनुभव हुआ न, उपेक्षा क्या होती है? उत्तर देना और न देना क्या होता है?"

रोहित ने सिर उठाकर उसे देखा। वह कह रही थी, "मोहिनी मेरी सहेली रही है। मैं उसे बहुत नजदीक से जानती हूं, वह एक विचित्र लड़की है। पता नहीं कैसे कहां से उसके भीतर एक अजीब भय आ समाया है। जिसमें प्रेम नहीं है यदि कहीं ऐसे पुरुष ने उसे छुआ या उसके समीप आया, तो वह नष्ट हो जाएगी।"

रोहित के मुंह से निकला, "मैंने उसे छुआ, क्या वह नष्ट हो गई?"

"उसे आशंका है!"

"कैसी आशंका?"

"पता नहीं, पर तब से वह भी बिस्तर पर पड़ी है।"

'नही, ऐसा नही हो सकता ।"

उसी क्षण, उसी हालत मे रोहित मोहिनी के घर पहुचा । तेज हवा बह रही थी । सारे वातावरण मे ठड छा गई थी । लग रहा था या तो आधी आएगी या आधी पानी दोनो ।

नौकर उसे अपने सग लिये मोहिनी के कमरे म गया । रोहित बठा नही । नौकर आग्रह करके चला गया ।

मोहिनी पलग से सटी आरामकुर्सी पर बठी थी । उसक हाथ म कोई किताब थी । अचानक उसन ऐसी उडती, तेज और चमकीली आखो स रोहित को देखा कि वह और घबरा गया ।

पर धीरे धीरे उसका चेहरा एकदम बदल गया । उसका मुख एक अजीब कोमलता स भर गया ।

उसन कहा बैठेंगे नही !"

रोहित न बडे निश्चित स्वर म जवाब दिया, मेरा खयाल है, आपने मुझे बिलकुल ही पसद नही किया होगा ।'

वह मुस्करा पडी । बडे सहज ढग स बोली, "अच्छा देखिए, आप अभी तक मुझे नही जानते मैं एक विचित्र लडकी हू ! लडकी न कहना चाहें तो स्त्री कह सकते हैं । हा मैं विचित्र स्त्री हू । मैं चाहती हू लोग मुझसे झूठ न बोला करें ।"

"मैंने क्या कहा ? कब क्या झूठ बोला ?"

"ओ हो, आप इतन उत्तेजित क्यो हैं ?'

"आपने आपने "

रोहित कुछ न बोल सका । वही बोली, "लगता है आपको मेरे बारे मे कुछ पता चला है ।"

"हा चला है ।"

"वह सच है ।"

'क्या ?

जो आपको पता चला है ।"

रोहित न गभीरता स कहा, मतलब मैं झूठा हूं । और अब तुम मर जाओगी ?

"यह किसने कहा ?"

वह फटी फटी आखो से बद खिडकी के बाहर देखने लगी। बाहर तूफान जसा आया हुआ था। तेज हवा, तेज वर्षा जैसे उस पूरे घर को, पूरे वातावरण को झकझोर रही थी।

वह उठ खडी हुई खिडकी के पास गयी। शीशे पर पानी के तेज़ छीटे पट रहे थ। वह घूमकर रोहित के पास आ खडी हुई।

"इधर देखिए, आप सीधे मेरे मुख को क्यो नही देखते ?"

रोहित ने माथा उठाकर मानो पहली बार मोहिनी को देखा। और जसे अपने आपको सम्हालते सम्हालते वही पलग पर बैठ गया। गहरी सासें लेता हुआ मोहिनी को देखा, फिर उसके चारो तरफ देखने लगा। रह रहकर जसे कोई बात उस पर चोट करती, वह दुख से भर जाता, फिर एकाएक बिलकुल शात ठडा पड जाता।

"तो इस ही प्रेम कहते हैं ?"

उसने अपने आपसे प्रश्न किया। इसके उत्तर म मोहिनी का चेहरा उसकी आखो मे इस तरह तिरने लगा, जैसे वह वहा हो ही नही। सब स्वप्न-सा अनुभव होने लगा।

थोडी देर बाद उसने देखा, मोहिनी का मुख और ज्यादा कामल हो गया है। वह इस तरह से देख रही है जसे कुछ पूछना चाह रही हो।

वह पलग से उठा। खिडकी के पास गया। तूफान नही था। केवल वर्षा हो रही थी। उसका सगीत कमर भर म छाता जा रहा था। उसके भीतर न जाने क्या भरने लगा। अब वह बिलकुल गूगा हो चला था।

उसने आज तक इस प्रकार का ताकना नही देखा था, जिस तरह मोहिनी चीज़ो को देख रही थी।

उसके मुह स निकला 'आओ, मेरा हाथ पकड लो !"

हठप्रभ रोहित ने उसकी ओर देखा। उसकी आखो मे न जाने कसी चमक दिखाई दी जो आधी वर्षा और धुध के पार खेल रही हो।

'अब भी क्या तुम्हारी तबीयत खराब है ?

और तुम्हारी ?"

'क्यो मैं कैसी लगती हू ?'

"बिलकुल "

"बोलो जरा भी कोई सकोच नही !"

"तुम नही चाहती, मैं तुम्हे प्यार करू ?"

मोहिनी चुप रह गई। उसके पास आई और उसके कधे पर अपना मुह रखकर निहायत कोमल स्वरा मे बोली, "नही, मैं तो चाहती हू " लेकिन उस तरह, नही, जैसे तुम मुझे पहले प्यार करते थे।"

"तो फिर कैसे ?"

"ऐसे कि हम दोना स्वय मित्र बन जाय !"

अज-विलाप

"वह देखो, वह ! फुनगी चढा आसमान, इमली के पेड पर अजामिल। बाप रे ! पता नही इसकी लरिकाई कब जायेगी। बाइस तेइस साल का पट्ठा जवान, मोछ-दाढी महराय आई हैं, देखो तनी, बदर माफिक पेड पर चढा है। सुनो-सुनो कैसा चिचियाय रहा है "

'बक, चिचियाय नही, गा रहा है—इमली के लेहुचा, कौन जवान मोर पकरी पहुचा। लेव, इमली के पेड पर से सारे बदर भदर-भदर कूदकर भाग गये!"

अपने दरवज्जे स लका मिसराइन चिल्लाकर बोली, "अरे अज्जू, ओ अज्जू, दहिजरा क पूत, का फूटिगै का ! अरे अब उतरि आव।" पर कौन उतरता है। बदर भगाने गया था अजामिल। लका मिसराइन ने भेजा था। जिस पेड पर अज्जू चढने लगे, क्या मजाल कि कोई बदर उस पेड पर बैठा रह जाय। तीन साल पहले जब बडकी आधी आई थी, पाडे जी के बगिया मे न जाने कहा से लगूर ने आकर डेरा जमा रखा था, तब उसे भगाने के लिए पाडे जी ने अजामिल को ही उकसाया था। लगूर जिस डाल पर छिपकर सोता, अज्जू चुपके से पहुचकर उसकी पूछ खीच देता। बचारे लगूर की नीद हराम हो गई, दुम दबाकर भागा।

इमली के पेड से नीचे कूदकर अज्जू पूरी तरह सास भी नहीं ले सका था कि रामरतन और छिनकू चौधरी दानो उसकी ओर लपके। रामरतन ने कहा, "ले बेटा, दौडकर बाजार चला जा, अलीदीन दरजी के यहा से

मेरे कपड़े ला दे।"

झिनकू ने कहा, "अरे बेटा अज्जू, उधर से लपककर डॉक्टर मे यहा चल जाना, ई पुरजा देकर दवाई लेत आना। किसी और के कहने मे मत आ जाना।"

अजामिल की माई न दूर से कहा, "अरे अज्जू के मुह म अभी तक दाना-पानी नही गया है। पूरे गाव भर न मानो मेरे बटे को नौकर बना रखा है।'

माइ बालती रह गई। अजामिल किलकारिया मारता हिरन की तरह चौकड़ी भरता हुआ निकल गया। बाजार म अलीदीन के यहा से डाक्टर के यहा पहुचा। दवाई लेकर जब चलने लगा तो डॉक्टराइन ने कहा जो र मेरी दो खाटें ढीली पड गई हैं, जरा कस तो देना।' खाटे खडी करन करते अज्जू को बेतरह भूख लग गई। गाव लौटा, तो दूर स ही शोर-ग़ुबारा सुनाई दिया। चौधरी और रामरतन के घर उनक सामान रख जब वह अपने घर की ओर मुडा तो गाव के बीचो बीच ठाकुर के अहात म चक्करघम्म मचा था। अज्जू के पिता पडित सत्यप्रिय जी लोगा को डाट रह थे, "अज्जू की सिधाई और भोलेपन का नाजायज फायदा उठाते हैं आप लोग! वह मेरा एकलौता बेटा है। पुरोहिती कथा वार्ता-काज से मुझे अक्सर बाहर आना जाना होता है। हाता है कि नही?'

"हा हा पडितजी! हाता क्या नही!'

"फिर, मेरा काम कसे चले? इधर आ, अज्जू!'

अजामिल ने पिताजी क पर छूकर प्रणाम किया। पिताजी तीन दिन बाद घर लौट तो बटे को घर-दरवाजे पर न पाकर इतन नाराज हुए हैं कि ठाकुर के दरवाजे पर पूरे गाव को बुलाकर डाट फटक रहे हैं।

अज्जू बोला "क्या हुकुम है, पिताजी?'

पडितजी गरजे, "तू सदा दूसरो का हुकुम बजाता रहगा या अपने विवेक ज्ञान से भी कुछ करगा? बाल बोलता क्यो नही?"

'बहुत करारी भूख लगी है पिताजी!"

"तो मैं क्या करू?"

'आप कहें तो खाना खा आऊ।"

'जा। खाना खाकर बैला की सानी प[illegible] कर, अपन दरवाजे पर रहना, मैं अभी आया।"

अजामिल अपन घर गया। अजामिल क' पिताजी ने गाव के लोगा का सावधान करते हुए कहा, "फिर अजामिल से कोई अपना काम लेगा, तो मुझसे बुरा कोई नही होगा। हा, कान खोलकर सुन लो।"

हा, हा, सबने कान खोलकर सुना। यह कोई नई बात ता है नही। छठे-छमासे पडित सत्यप्रिय को इस बहाने पूरे बनकटी गाव को डाटने फटकारने को मिल जाता है। ब्राह्मण की फटकार, दुधारी गाय की फुफकार। आखिर अजामिल के ही ता पिताजी हैं। अजामिल के नाम पर इतनी डाट फटकार मे क्या रखा है। कल भोर मे पडितजी फिर निकल जायेंगे पुरोहिती मे, फिर अजामिल भइया पूरे गाव जवार का अज्जू बेटा।

'ओ र अज्जू, जरा हगा पहुचा दे मेरे तिनकठिया वाले खेत म।"

'आ रे बचवा, आ जा छप्पर उठा दे।'

"जरा काल्हू हाकना भाई, दिसा जगल हा आऊ।"

'शहर चलागे अज्जू भाई, सनीमा दखेंगे।'

नहीं भाई पिताजी न कहा है, सनीमा फनीमा स चरित्र भ्रष्ट होता है।"

"अच्छा, एक गाना गा दा, अज्ज भइया।'

'कौन सा गाना?"

'अर वही—बिना मोती के चैना पडत नाही।"

'ला तुम कहत हो सो गा देता हू, जमुना भाई।' गाना पूरा कर अज्जू न कहा, 'कहा ता अब घर जाऊ जमुना भाई।"

'सुना, अज्जू।"

"कहा, भाई।'

'अगर कोई तुमस कह कि अज्जू भाई, कुए म कूद पडो या आग लगा लो अपन कपडा म ता क्या वैसा कर लोगे?"

"कोई ऐसा मुझे कहगा क्या? कल्पना करो।"

'काई ऐसा कह तो?"

"ऐसी कल्पना मैं क्या करू?"

ठीक कहा अजामिल ने । पूरा गाव-जवार अज्जू को प्यार करता है। प्यार ही नही, इज्जत करता है । अजामिल जहा, जिधर, गाव सिवान मे निकलता है, लोग उसे अपने पास बुलान लगते हैं। लोग खुद दौडे हुए उसके पास आ जाते हैं । जिस दिन जो अजामिल को न देखे, उस रात अजामिल से मिले वह रह नही सकता।

अज्जू की माई तब अपना सिर पीटती हुई कहती, "बाप रे बाप, हमरे बेटवा मे नीद भी हराम । देखो, अब चुपचाप पैर दबाय चले जाव, हां। तनिक आहट हुई नही कि अज्जू जाग जाएगा।

"अरे माई, अजामिल कोई लडिका-नदान तो है नही !"

"हा हा, चलो-चलो, बडे चाचले न बघारो, शिवशकर। हम सबै कै जानी । रात को कोई काज आन पडा है, तब बडा परेम थर्राया है अज्जू के लिए । जाव जाव, नाही तो कहि देइत है । हा !"

चैत रामनवमी अयोध्या के मेले मे पैदल जान को लका मिसराइन फाड बाधकर खडी हो गई । अस्सी साल की बुढिया मिसराइन, बनकटी गाव मे घूम-घूमकर कहती रही 'जिसे चलना हो, चल अयाध्या हमरे साथ ।" कुल ग्यारह जना गठरी मोटरी बाधकर तैयार । तीन मरद, मिसराइन सहित पाच मेहरारू और तीन लडकिया। मिसराइन डडा पटकती हुई अजामिल की माई के पास पहुची ।'

"कहा है अज्जू ?"

माई ने गुस्से स पूछा ' क्यो ? '

' अरे अज्जू हमरे पचन के साथ अयोध्या मला चलगा ।"

"मेला चलेगा, हाय, हाय ! गठरी-मोटरी ढोवेगा । यह नही होगा, हर्गिज नही होगा, तुमसे चला न जायेगा तो अज्जू तुम्ह अपनी पीठ पर ढोवगा, यह अब नही होगा । राह चला न जाय रजाइ के फाड बाधे जिस जाना हो आप अपने बूत । नही जाने दूगी लुच्चे-लपाडिया के साथ अपन बटे को । '

लका मिसराइन अब बिगडी, ' चुप रह बहू बहुत हो गया । अज्जू तुम्हारा बटा है, बिलकुल है । तुम जनी हो, मुला हमारा बेटा भी तो है अज्जू ।'

"कैसा बेटा ? किसी और के बेटे को क्यो नही बना लेती ? भर पडा तो है पूतो से बनकटी गाव।"

"सब स्वार्थी मुहचोर, कामचोर हैं, बहू ! अज्जू है अकेला बेटा, वीर बहादुर सेवकराम। तुम चाहती हो अज्जू भी वैसे ही जाय जैसे औरो के कपूत हैं—मतलबी, कनकावुर, मेहरे। चलो अज्जू, मेरा आडर है !'

"वाह रे तेरा आडर ! बैलो को सानी पानी कौन देगा ? खेत खलिहान कौन देखेगा ? पडित जी को जवाब कौन देगा ?"

"मैं दे दूगी जवाब। मेरा बेटा रामकृपाल तब तक यहा का सारा कामकाज सम्भाल लेगा, समझिउ कि नाही !"

क्या समझेगा कोई !

माई और मिसराइन के बीच जो महाभारत मचा हुआ था, अज्जू ने हाथ जोडकर कहा "जब इतना कह रही है तो जाने दे, माई ! सबको अयोध्या पहुचाकर कहो तो उसी दिन उलट पैर लौट आऊगा।'

माई ने तडपकर कहा, "तू अजोध्या जायगा तो बिना सरजू मे स्नान किये, बिना हनुमान गढी मे परसाद चढाये लौट आयेगा रे !"

"जसी आज्ञा करोगी, वही होगा माई !"

'तू कुछ अपने दिमाग, अपनी सोच-समझ से करेगा या सदा दूसरो के ही कहने से चलेगा।"

'तू क्या चाहती है माई, बोल, मैं वह पूरा करके न दिखा दू तो मेरा नाम अजामिल नहीं।"

'मेरे तो भाग फूट गए न जाने यह नाम किसन दे दिया ?"

अजामिल जब सबका सग लिये अयोध्या तीर्थयात्रा पर चला, तो गाव-गढ़ी के कुछ लगडे लूले भी साथ हो लिये। जब अज्जू भइया साथ हैं तो क्या चिन्ता ?

बनकटी से साहबगज साहबगज से राघवपुर गाव। राघवपुर के तिवारी का परिवार बैलगाडी से अयोध्या मेला म जा रहा था। सियाराम तिवारी ने अजामिल को देखते ही पुकारा, "अरे अज्जू बेटा, आ जा, आ जा। मेरी बैलगाडी के जुए पर। हम भी अयोध्या चल रहे हैं।" अजामिल ने बढकर तिवारी के पाव छुए। बैलगाडी पर आहार पडा था।

' तिवारी जी आज्ञा हो तो सवा मिसराइन को बलगाडी म विठाय दू। आपन लोग तो पैदल आए हैं, पैदल चलेंगे।"

'हा हा, विठा दे वटा!" पायलागी मिसराइन!"

अज्जू ने मिसराइन बूढी को गेंद की तरह उठाकर दम्म से डाल दिया बैलगाडी म। मिसराइन ओहार के निकट घिमक गइ। आगे-आगे तिवारी जी की बैलगाडी। दायें बायें लाग।

लगइदीन बोला, ' अज्जू भइया, तुम आग-आगे चलो, नही तो सारी धूल उडकर तुम्हारे ऊपर "

' लेव, आग आगे ही सही।"

पन्नारथ बहू बोली, ' अर कोई गाना छेडो अज्जू भइया! रास्ता एसे घोटे कटी।"

"लेव काकी, सुनो—

बनवारी हो। हमरा क लरिका नादान।"

चलती हुई बलगाडी के भीतर स, जरा-सा ओहार उठाकर तिवारी जी की बडी लडकी कस्तूरी न दखा। "हाय यह कौन गा रहा है। पट्ठा कितनी मस्ती स गा रहा है! ई कौन है?"

' अरे, यही तो अजामिल है आपन। लाखा म एक। हा चरित्रवान कर्मवान दयावान, सवावान और इतना सुदर सजीला भगवान भगवती माई ठाकुर बाबा इम अच्छे रखें। हा ' लका मिसरादन की आखा स भर भर आसू झरन लग। जैसे अज्जू उन्ही की कोख स जन्मा हो। मिसराइन का जितन सारे अच्छे-अच्छे शब्द याद थ, सब जड दिय अजामिल की तारीफ म।

"अच्छा!"

' हा, तिवराइन।

तिवराइन ने अपनी जवान वेटी का डाटा बन्द कर ओहार कस्तूरी, क्या ताक रही है हा, ता मिसराइन

'हा, तो मैं का कह रही थी ?

अजामिल के बारे मे।"

मिसरादन ने बलगाडी के फट्टे पर डडा मारकर कहा, "अरे अज,

ओ र अज !" अज्जू क लिए मिसराइन दादी को जब जरूरत स ज्यादा प्यार-दुलार उमड़ता है, तब उस अज नाम स पुकारती हैं।

"हा, दादी !" तब अज भी दादी कहता है।

"अर का पें पो गा रहा है। अरे कोई भजन गा।"

'लेव भजन—जननी बिनु राम, अव ना अवध मा रहिब।"

"ई तो बहुत पुराना भजन है रे !"

"तो लेव, फिल्मी भजन सुनो—

माई जसोदा से पूछें नन्दलाला

राधा क्या गोरी मैं क्यों काला !

बैलगाडी म स एक खिलखिलाती हुई हमी बाहर उफन पडी।

तिवराइन न डाटा "चुप रह कस्तूरी !"

तबा मिसराइन मुदित स्वर म बाली, 'अर यही तो हसन बोलन की उमर है। बडी सुन्दर बिटिया है ! तिवराइन, कहीं ब्याह शादी की भी चिंता कर रही हो या हाथ पै हाथ धरे बैठी हो ?"

' तिवारी जी कब स दौड धूप कर रह हैं। बात ई है कि " तिवराइन न बेटी की आख बचाकर मिसराइन क कान म कहा, ' बात ई है कि बडी मुन्चनी है अपन बाप की। बाप से मुहफट कह दिया है शादी मेरी पसन्द की होगी बाबू ! जब देखकर मैं हा' कहूगी तभी !' '

मिसराइन खिलखिलाकर हस पडी। तिवराइन भी हसने लगी।

दिन डूब चुका था।

तिवारी ने आम की बगिया म कुए क पास बैलगाडी रोकत हुए कहा "बस, आज यही डेरा पडेगा। सुबह तडाके भुरुभुआ उगै के साथ कूच करेंगे दोपहर होत होत अयोध्या जी। बोलो सियावर रामचन्द्र की जै ! बोलो अयोध्यानाथ की जै ! बोलो राजा रामचन्द्र की जै। पवनसुत हनुमान की जै।"

जितन लोग थे साथ म सबन एक एक जैकार की, बाकी लाग एक-स्वर म हाथ उठा उठाकर ज कहत रहे।

अज ने बिलकुल उसी शुद्ध सेवा और भक्ति भाव से पूछा, 'प्रेम कैसे किया जाता है, दादी ?"

"अरे, बताऊंगी न !"

"तो कर दूंगा दादी, इत्मिनान रखो ! कहो तो अब सो जाऊं, दादी !"

"भूलना नहीं।"

"राम जाने, नहीं भूलूंगा। वचन पूरा करूंगा।"

अजामिल सो गया, लेकिन मिसराइन बैठी-बैठी तुलसीमाला घुमाती, सियाराम सियाराम जपने लगी।

अभी डेढ़ घटा रात बाकी है। लोग जगकर यात्रा की तैयारी में लगें, इससे पहले मिसराइन ने कस्तूरी और तिवराइन को जगाया। तीनों जनी कुए पर गई। कस्तूरी ने पानी भरने के लिए गगरा कुए में डाला। भरा गगरा खींचने लगी कि आधे कुए में उबहन टूट गई और धड़ाम से गगरा कुए में गिरा।

हाय दइया, बाबू जागेंगे तो क्या कहेंगे !" कस्तूरी का दायां हाथ दबा दिया मिसराइन ने।

तिवराइन अलग परेशान। "अब का होगा ! कस्तूरी के बाबू जागेंगे तो मुझे डांटेंगे कि इसे क्यों गगरा भरने दिया अनजान कुए में रात के वक्त। हाय दइया, मैं क्या करूं ?"

मिसराइन ने हाथ दबाकर कहा, ' बेटी, मेरी बात मान। जा, चुपके से उसी अजामिल को जगा, वह अभी कुए में से गगरा निकाल देगा और कोई उपाय नहीं, जल्दी कर जल्दी, हां।"

घबराई हुई कस्तूरी ने अजामिल को किसी तरह जगा तो दिया, पर लाज के मारे कुछ न कह सकी। कुए की तरफ किसी तरह इशारा भर किया। चुपचाप आगे-आगे कस्तूरी पीछे पीछे गाय के जवान बछवा की तरह अजामिल। पलक भांजते ही अज्जू कुए के पानी में डूबकर नीचे गगरा टटोलने लगा। ऊपर कुए की जगत पर कस्तूरी का जी धक धक् करने लगा। हाय ! अज गगरा हाथ में लिये पानी के ऊपर आ गया।

ठीक आधी रात के समय, जब सारे लोग बेसुध सो रहे थे, लका मिसराइन ने बहुत धीरे-से अजामिल को जगाया !

"अज ! ओ रे अज !"

'का है रे, दादी !"

'जा धीरे-से आख धो आ !"

"लो, आख धोकर आ गया।"

"अयोध्या धाम की ओर मुह करके बैठ।"

"लो, बैठ गया।"

"एक बात कहू रे।"

" कहो न !"

मरी बात मानगा न ?"

" अरे आज्ञा करके देख लो।'

"'तो सुन—तिवारी जी की बिटिया कस्तूरी है न ?'

हा, है !'

देखा है ?'

' देखा नही, सुना है।"

' दक ! वह देख, वह साई पडी है। जा, दख ले ना। जा !'

' ना ना, मुने लाज लाग, दादी !'

' मैं कहती हू जाकर देख आ, नही तो मारू वह डडा !"

अच्छा अच्छा, देख लता हू।"

अज्जू सोती हुइ कस्तूरी का देख आया।

' दख लिया ? कसी लगी ?"

"वक !'

बिना रात क मिसराइन की बत्तीसी खिली रही। चारा ओर रात का सन्नाटा छाया हुआ था। कही दूर स तीर्थयात्रियो का गायन सुनाई दे रहा था। मिसराइन न अज्जू क माथ पर दाइ हथली रखकर कहा, " अज्जू मरी एक बात पूरी कर।'

' जरूर करूगा दादी !"

तो सुन, कस्तूरी स प्रेम कर !'

अज ने बिलकुल उसी शुद्ध सेवा और भक्ति भाव से पूछा, ' प्रेम कैसे किया जाता है, दादी ?"

"अरे, बताऊंगी न !"

"तो कर दूंगा दादी, इत्मिनान रखो ! कहो तो अब सो जाऊं, दादी !"

"भूलना नहीं ।"

"राम जाने, नहीं भूलूंगा । वचन पूरा करूंगा ।"

अजामिल सो गया, लेकिन मिसराइन बैठी-बैठी तुलसीमाला घुमाती, सियाराम सियाराम जपने लगी ।

अभी डेढ़ घंटा रात बाकी है। लोग जगकर यात्रा की तैयारी में लगें, इससे पहले मिसराइन ने कस्तूरी और तिवराइन को जगाया। तीनों जनी कुएं पर गई। कस्तूरी ने पानी भरने के लिए गगरा कुएं में डाला। भरा गगरा खींचने लगी कि आधे कुएं में उबहन टूट गई और धड़ाम से गगरा कुएं में गिरा।

"हाय दइया, बाबू जागेंगे तो क्या कहेंगे !" कस्तूरी का दायां हाथ दबा दिया मिसराइन ने।

तिवराइन अलग परेशान। "अब का होगा ! कस्तूरी के बाबू जागेंगे तो मुझे डाटेंगे कि इसे क्यों गगरा भरने दिया अनजान कुएं में रात के वक्त। हाय दइया, मैं क्या करूं ?"

मिसराइन ने हाथ दबाकर कहा, ' बेटी, मेरी बात मान। जा, चुपके से उसी अजामिल को जगा, वह अभी कुएं में से गगरा निकाल देगा और कोई उपाय नहीं, जल्दी कर जल्दी, हां।"

घबड़ाई हुई कस्तूरी ने अजामिल को किसी तरह जगा तो दिया, पर लाज के मारे कुछ न कह सकी। कुएं की तरफ किसी तरह इशारा भर किया। चुपचाप आगे-आगे कस्तूरी पीछे-पीछे गाय के जवान बछवा की तरह अजामिल। पलक भाजते ही अज्जू कुएं के पानी में डूबकर नीचे गगरा टटोलने लगा। ऊपर कुएं की जगत पर कस्तूरी का जी धक धक् करने लगा। हाय ! अज गगरा हाथ में लिये पानी के ऊपर आ गया।

यात्रा चली ।

लका दादी ने कहा, "सुन रे अज, अब मौका देखकर कस्तूरी स झटाक से कह दे कि मुझे तुमसे प्रेम हो गया है, हमारा विवाह हो जाय ।"

अयोध्या म बाबा राघव दास की छावनी पर यात्रा पूरी हो गई । गाड़ी रुकते ही कस्तूरी छावनी के मंदिर की ओर दौड़ी । दादी न इशारा किया । अज्जू उसके पीछे पीछे दौड़ा । मंदिर के चबूतरे पर अचानक कस्तूरी का दाया हाथ पकड़कर अज न अजब मंत्रमुग्ध स्वर म कहा, प्यार हो गया मुझे तुमसे । अब बस, ब्याह हो जाय !"

'बक !"

दाता तल आचल का कोना दबाये कस्तूरी दौड़ी अपनी मा के पास चली आई । अज चुपचाप मंदिर के चबूतरे पर मूर्तिवत् खड़ा रहा ।

बनकटी गाव मे लका मिसराइन ने बात फला दी कि राघवपुर के तिवारी की इकलौती बेटी और पंडित जी के इकलौते बेटे अजामिल की शादी पक्की हो गई है । यह बात जैसे ही पंडित सत्यप्रिय के कानों मे पड़ी उन्होने अजामिल को पुकारा, 'अज, बेटे !"

'हा पिताजी !"

यह राघवपुर के तिवारी की बेटी के साथ तुम्हारी शादी की बात किसने की ?'

मैंने खुद पिताजी !"

किसके कहने पर ?"

'लका दादी "

पंडित सत्यप्रिय मारे आवेश और क्रोध के अज पर टूट पड़े । अज्जू ने जरा भी अपना बीच बचाव नहीं किया । अज्जू की माई छाती पीटने लगी । अज्जू को जमीन पर गिराकर पंडित सत्यप्रिय पागलों की तरह उसे पीटने लगे । पहले हाथ पर से फिर खड़ाऊ जूते से । अज्जू की चीख

सुनकर सारा गाव वहा घिर आया पर किसी की हिम्मत नही कि पडित जी का कोई हाथ थामे। अचानक उस भीड को चीरती हुई लका मिसराइन दौडी और तडपत छटपटाते हुए अज्जू के ऊपर बिछ गई।

"ले, मार, और मार !"

'हट जाओ, वरना बहुत बुरा होगा !'

मिसराइन ने रोते हुए कहा 'अब इससे बुरा और क्या होगा ? ऐसे निर्दोष, भोले जवान बेटे को कसाई की तरह मारा। बोल, क्या मारा तूने ? क्या कसूर किया इसने ? बोलता क्यो नही ? बता, क्या है अज की गलती ?"

पडित सत्यप्रिय की आखो से चुपचाप आसू ढलकने लगे। भरे कठ से बोले यह खुद क्यो नही मुझसे सवाल करता कि मैंने इसे क्यो मारा ? यह हर काम दूसरो के कहने से ही क्यो करता है ? यह स्वय अपने कर्म का कर्ता कब होगा ?"

पडित सत्यप्रिय ने रोते हुए अज को पूरी ताकत स उठाते हुए कहा, "जो अपने कर्मों का कर्ता नही, वह उसका भोक्ता नही, जो भोक्ता नही उसे कभी मुक्ति नही मिल सकती।'

अज चुपचाप बैठा जमीन म नजर गडाये था। अपनी एकाग्र दृष्टि स न जाने क्या देखने लगा था, पहली बार। मा, पिता जी लका दादी और पूरा गाव रो रहा था। अज न अजब नजरो से विलाप करते हुए पिता की ओर देखा। पास जाकर उनके पैर छूकर कहा, ' रोओ नही पिताजी, आज मैं खुद जा रहा हू राघवपुर के तिवारी के पास मेरे साथ कोई नही आयगा।"

लका दादी के मुह स निकला, मुझे भी साथ नही ?"

' नही !"

अब तू किसी के कहने से कुछ नही करेगा ?

नही, जो मैं चाहूगा, वही करूगा !"

अज की माई ने कहा, ' तो मेरी सुन, तिवारी की बेटी की बदनामी है, मैं उससे तेरी शादी नही होने दूगी !'

"अब मेरी शादी उसी स होगी।'

अज ने जाकर कुए पर खूब स्नान किया। अपनी इच्छानुसार कपड़े पहने। अपने गाव से राघवपुर के लिए चला।

पिताजी के मुह से निकला, "बेटे, कल सुबह आना।"

अज अपने सिर पर हल्दी रगी पगडी बाधता हुआ चला।

उसके पीछे अज के पिताजी पडित सत्यप्रिय चले आ रहे थे और उनके पीछे लका मिसराइन।

वही कथा कहो, मा

"ऐसा नहीं है, मा !"

"क्या ?"

"ऐसा नही है !"

' क्या नही है ?"

अचानक एक चुप्पी छा गई। मा की तरफ से नही, बेटी की ओर से। यूनिवर्सिटी से घर आय आज तीन दिन बीत गए, पर बेटी का मुंह जसे आज खुला।

उस अब बेटी कहना ठीक न होगा। तब भी, आज से चार साल [illegible] जब वह स्थानीय महिला विद्यापीठ से पास होकर उतनी दूर यूनिवर्सिटी मे प्रवेश लेने अकली घर से निकली थी उसने पिताजी से [illegible] था "भला मरे अकेले जाने म क्या डर है ? मुझे अब किसी [illegible] नही। पिताजी बेकार मे 'बिटिया बिटिया' की रट [illegible] मा तुम तो 'अरे बिटिया, ओ बिटिया—मेरी बिटिया [illegible] कैसे, केतिर खाना खाएगी ?'"—व दा ने मा [illegible] । [illegible] मा हसती रह गई थी।

इस अब व दा नाम से पुकारना होगा। [illegible], मा कैसे नाम लेगी जवान बेटी का, जब [illegible] । [illegible] पास कर ले या ले०ले०बी०(एल [illegible]) [illegible]

पर, मा को क्या पता ! [illegible]

ऐसा घट जाता है कि उसे भूलते नही बनता । वह चीर फाड डालता है । न जान कहा-कहा क्या-क्या तोड डालता है। जिस दिन, इस बार व दा बिना किसी छुट्टी के बे-बताए घर आई है, मा ने देखा—बेटी का मुह जैसे किसी ने सिल दिया है । आखे फूली फूली हैं। किसी के कुछ पूछने पर कही कोई जवाब नही । नीद नही खाना नही, प्यास नही । पिताजी या भी व दा से ज्यादा बोल चाल नहीं करते थ । पत्रकार का जीवन था उनका । घर म या तो वे कुछ पढते लिखते होते, नही तो थक्कर सो गए होते । लेकिन इस बार मा न बेटी को सुनाते हुए कहा था, सुनत हो बेबी के बाबूजी बेटी स कुछ पूछो तो भला ! ई का है माजरा ? ई माफिक मुह फुलाए है। ऐसा तो कभी नही भया।'

'तो पूछो ना !'

भला मैं का पूछ ?"

"ठीक है थकी होगी !'

"तुम्ह तो सब कुछ ठीक है !"

मा ने व दा स पूछा था, "डॉक्टर को बुलाऊ ?' व दा का मुह तमतमा आया था। तब मा ने पडितजी को बुलाया। व दा की कुडली बिचरवाई गई । सब ठीक-ठाक निकला । उस शाम मा पूजा-पाठ करक व दा के पास ठाकुरजी का चरणामत लेकर गई । व दा ने उस माथे लगाया । मा ने उसे बाहो मे भरकर कहा, 'देख बिटिया, अगर अपना दु ख-सुख मुझे नही बताएगी तो मेरी जिंदगानी का कौन फायदा !"

कहकर मा चुप हो गई। उसकी आखो स झर झर आसू झरने लगे। व दा ने मा को चिकोटी काटते हुए कहा, 'जब कुछ बात नही है तब क्या बताऊ ?'

अचानक मा बोली 'सुन री बिटिया, वह जो तेरे जगदबाप्रसाद हैं अर तरे वही गुरुजी "

'मेरा कोई गुरु-वुरु नहीं है !'

व दा के मुह स जिस ढग स यह बात निकली मां न समझ लिया चोट कही यही है। जगदबाप्रसाद—व दा क लेक्चरर व दा के परमप्रिय, परम पूज्य जगदबाप्रसाद उन्ही क कारण तो व दा गई उस यूनिवर्सिटी मे,

वरना क्या वृंदा के शहर में कोई युनिवर्सिटी नहीं थी !

मां चुपचाप सोच रही थी। वृंदा ने मां को पकड़कर पलंग पर लिटा लिया, "वही कथा कहो मां !"

"कौन-सी ?"

"वही, बंदरिया और राजकुमार वाली कथा।"

प्रसन्न मां कथा कहने लगी। वृंदा उस कथा की एक-एक बात को पकड़कर चलने लगी, "एक था राजा। उसके थे तीन राजकुमार। राजा अपने तीनों राजकुमारों को लेकर बाग में गया। कहा—अपने-अपने धनुष-बाण चलाओ। बड़े राजकुमार ने बाण चलाया। बाण से छूटा हुआ तीर बहुत दूर एक राजा के राजमहल में जा गिरा। राजा ने कहा—तुम्हारी शादी इसी राजा की राजकुमारी से होगी। इसी तरह मंझले राजकुमार का तीर एक दूसरे राजा के राजमहल में जा गिरा। उसकी शादी वहां पक्की हो गई, पर सबसे छोटे राजकुमार का बाण एक पेड़ पर जा गिरा। उस पेड़ पर एक बंदरिया रहती थी। सो उस छोटे राजकुमार की शादी उसी बंदरिया से हुई।

"दोनों राजकुमार अपनी-अपनी रूपवती रानियां लेकर राजमहल में आए। छोटा राजकुमार अपनी बंदरिया लिए राजमहल में आया। बंदरिया को राजकुमार की पत्नी के रूप में देखकर सभी हंसते। उसका खूब अपमान होता।

"एक दिन बड़े राजकुमार ने अपनी शादी की खुशी में दावत दी। दूसरे दिन मंझले ने दावत दी। छोटा राजकुमार चिंता में डूबा बैठा था। तब बंदरिया ने अपने पति से पूछा—आप किस चिंता में पड़े हैं? राजकुमार ने बताया—सबने दावत दी। अब मैं कैसे दावत दूं?

"बंदरिया ने कहा—आप भी लोगों को दावत दीजिए। मैं प्रबंध करती हूं।

"बंदरिया ने सारे व्यंजन बनाए। सबको बुलाया। धूमधाम से छोटे राजकुमार के यहां दावत हुई। सब हैरान ! रात को उसने देखा अपने रंग-महल में बंदरिया की जगह एक अपूर्व सुंदरी। परम लावण्यमयी नारी—सर्वांग सुन्दरी।

"सुबह के वक्त फिर वही बदरिया। वह रूपसी अदृश्य। राजकुमार कुतूहल से भर गया। उसकी जिज्ञासा की कोई सीमा नहीं। और अचानक एक रात राजकुमार ने देखा छिपकर। बदरिया ने अपने शरीर के चमड़े का खोल उतारकर खूटी पर टागा और वह रूपसी, अनिंद्य सुदरी के असली रूप मे राजकुमार के पास। राजकुमार के आश्चय की कोई सीमा नही।

"दिन बीतते गए। राजमहल के लोग आश्चय मे डूबे हुए कहते—अरे देखो तो छोटा राजकुमार कितना प्रसन्न है अपनी बदरिया के साथ! भला वह कैसे खुश है! कहा वह राजकुमार और कहा वह बदरिया! पर लोगो को उस गहरे रहस्य का क्या पता!

"छोटा राजकुमार सोचने लगा कि क्या उपाय करू कि अपनी परम सुदरी स्त्री को अब और उस बदरिया के रूप मे न देखना पडे। उसने उपाय सोच लिया। एक रात उसने बदरिया के चमडे के खोल को बाहर ले जाकर जला दिया। यह देखकर रानी बहुत तडपी, बहुत रोयी और उसने कहा—अब मैं इस कमरे से बाहर नही निकलूगी।

"क्या?"

"राजकुमार के इस प्रश्न के उत्तर पर वह बोली "

व दा की आखो से झर झर आसू बह रहे थे। मा की कथा रुक गई।

"क्या है री, बेटी?"

व दा चुप थी। आखें भरी हुई

यूनिवर्सिटी मे जगदबाप्रसाद इतिहास के अध्यापक। बी०ए० आनर्स मे इतिहास ही तो पढने गई थी उनसे वृ दा। तब से अब तक कितना रास्ता तय हो चुका है। जगदबा ही तो माना पहले राजकुमार थे, जिनका बाण वृ दा को लगा। उसी से बिंधी हुई वह अपने शहर को छोड इतनी दूर उस यूनिवर्सिटी मे गई।

तुम सोओ वृ दा, मैं तुम्हे यह किताब पढकर सुनाता हू।

कितनी किताबें इसी तरह जगदबा ने पढकर सुनाई हैं। फिर उसी पलग पर साथ सोकर उन किताबो पर न जाने कितनी देर तक बातें हुई हैं—शोध की बातें, इतिहास-दशन की बातें, त्याग, ईमानदारी और चरित्र की बातें

''व दा, क्या तुम्हे मेरे प्रेम पर विश्वास नही है ?''

''तुम यह प्रश्न क्यो करते हो ? मैं तो कभी स्वप्न मे भी नही अविश्वास कर सकती तुम पर कितने सौभाग्य की बात है कि इस दुनिया मे तुम हो। तुम मान आप। आप मान 'सर' सर' माने तुम ''हसी। आह्लाद।

मा उठकर चौके मे चली गई थी। व दा वही पलग पर उन्मुक्त भाव से लेट गई थी। जैसे वह गहरे जल के ऊपर कोई पडी हो।

फरवरी के दिन थे। एम० ए० फाइनल म एक अजीब तरह की ठड और खामोशी थी। छात्र छात्राओ की धीमी-सी हसी और सामान्य लक्षण बन जाने वाली एक खासी सुनाई दी।

' खामोश रहिए, आप लोग नही जानते, मेरा नाम है जगदबाप्रसाद।''

सब खामोश थे।

न जाने क्या जगदबाप्रसाद एकाएक गुस्से मे भर गए, ''राममनोहर यादव, यू गेट अप ! गेट आँउट ऑफ द क्लास !''

अगीठी मे, जले हुए फूस की राख के ठीक बीच म, हल्की सी सास की तरह एक नन्ही चिनगारी राममनोहर यादव के चेहर पर सुलगती रह गई थी। उसे केवल व दा न देखा था।

राममनोहर यादव जगदबा की जन्मभूमि का है। उसने बताया कि जगदबा बाबू विवाहित हैं। उनक दो बच्चे हैं। पत्नी से अब कोई सबध नहीं है। बच्चो समेत बेचारी नैहर मे रहती है। खर्चा पानी भी नही भेजते।

' क्यो सर, यह सही है ?'

'किसने कहा ? यह झूठ है। मेरी कभी शादी-वादी नही हुई। वृ दा, मेर जीवन मे तुम पहली और अतिम हो। मैं तुमसे ईश्वर साक्षी है '

' ठीक है, सर !''

देखो व दा, कितनी बार कहा, तुम मुझे 'सर' न कहा करो। इसम बनावट है, दूरी का अहसास होता है।''

एक सपूण मुसकान खिलती है दानो के मुख पर। हमेशा, इसी तरह, ऐसे क्षणो पर। पर उस दिन सर' का चेहरा बिलकुल स्याह पड गया था।

तो क्या हुआ सर अगर यह बात सही भी है, तो भी आई डोट

माइंड।"

एक लंबी खामोशी, जो शायद स्वीकार के पास पहुंच चुकी थी, फिर टूटकर लौटी, "नहीं, मैं कभी झूठ नहीं बोल सकता और तुमसे। तीन वर्षों में तुम्हारे साथ जिस मधुर बंधन में बंधा हूं, केवल वही सच है।"

"जो अप्रिय है वह भी सच है, सर।"

वृंदा की इस हल्की-सी बात ने जैसे फूस के ढेर में आग लगा दी हो, 'तुम्हें बताना होगा तुमसे यह किसने कहा?"

"मैं नाम बता सकती हूं, पर वचन दें उस पर आप जरा भी नाराज न होंगे?"

"वचन देता हूं।"

"राममनोहर यादव।"

उसी रात विवेकानंद हॉस्टल में राममनोहर यादव को तीन गुंडे उठा कर ले गए थे। दूसरे दिन वह यूनिवर्सिटी अस्पताल में ले आया गया था।

वृंदा जब उससे मिलने गई थी तब शाम हो चली थी। क्षितिज पर कालिमा-सी घिरती जा रही थी। उसके सामने जीवन में पहली बार माथा झुकाए वृंदा ने कहा, "मैं लज्जित हूं, क्षमाप्रार्थी हूं।"

यादव ने कहा, "आप 'सर' से सुरक्षित बच जाएं, यही मेरा संतोष होगा।"

अस्पताल से ठीक होकर वह घर जा रहा था। स्टेशन पर यादव को गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ पता नहीं चला क्या? शून्य में वृंदा के कान सुनते हैं 'सर' की वही बात—आप लोग नहीं जानते मेरा नाम जगदंबा प्रसाद है!

अचानक मां की आवाज टकराई, "चल कुछ खा ले, बिटिया!"

वह मां के गले में हाथ डालकर बोली, 'बता मां, रानी ने बंदरिया की खाल में अपने को क्यों छिपा रखा था?"

'अरे उस पर शाप था।"

"नहीं, मां!"

'तू बता।"

'मां, वह रानी अपनी बंदरिया की खाल के लिए क्यों इतना दुखी

हुई ? उसके बिना अब वह कमरे से बाहर ही नहीं निकलेगी ?"

"अरे क्या है, क्या।"

"फिर वही क्या कहो, मा !"

"अच्छा, चल पहले पेट भर खा ले, फिर "

व दा ने खूब पेट भर खाया। मा के मुख से फूटा, "अरे जो सच्चा है, उसके ऊपर कोऊ चाहे जेतना दूसरे के खाल ओढाई दे तो का ?"

"वह खाल के लिए इतना तडपी क्यो है, मा ?"

"बदरिया की खाल मे भी तो जान थी, बेटी !"

"अच्छा मा, फिर क्या हुआ ?'

मा फिर उसके आगे कथा कहन लगी। वृ दा कई दिनो बाद गहरी नीद मे सो गई। सपन म क्षण भर के लिए उसकी आखा के सामने ढलता सूरज अपनी सारी उदासी के साथ आ खडा हुआ।

कथा बिसरजन

बाहर के अंधेरे और दरवाजे की ओट म पैंसठ साल की अइया दीवार के सहार अब तक खडी थी। बडी बहू से बेतरह डाट खाने के बाद स अइया लकडी की पुतली की भाति उस घर म इधर स उधर डोलती रह गई थी।

कुसुम आज इतनी देर से घर लौटी है। दरवाजे पर ही कुसुम को अपने अक म लेकर अइया ने पूछना चाहा, 'अरे नातिन बेटी, स्कूल मे आज क्या हो रहा था रे ? इत्ती देर क्यो की ? हाय, कित्ती भूखी-प्यासी है रे' पर अइया से आज कुछ न पूछा गया। बस, कुसुम का मुह देखकर निहाल हो गई।

कमरे मे आकर कुसुम ने रोशनी जलाकर अइया का मह देखा।

"यह क्या, तुम्हार हाथ इतने ठडे, अइया!'

' मेरा हाथ अब क्या गर्म रहेगा रे ?"

"क्यो ?'

"इतनी बूढी हू !"

'नही, अइया! तुम्ह बादलो की हवा लग गई है शायद ! चलो, बिस्तर पर सो जाओ!'

कुसुम अपनी बूढी अइया को शाल के भीतर ढककर और अपन शरीर के ताप से गरम करके बोली, ' आज इतनी उदास क्यो हो ? किसी न फिर कुछ कहा है ?"

'नही रे '

"तो "

अचानक मा की आवाज सुनाई दी, "इस लडकी से मैं तग आ गई। आते ही अपनी अइया की खाट मे घुस गई। न जाने कब इस अक्ल आयेगी । अइया को भी कुछ समझ है न बूझ ।"

मा को इस तरह कमरे मे देखकर कुसुम डर गई।

मा ने डाटते हुए कहा, "चल, उठती है या नही? चल, पहले कपडे बदल।"

अइया ने कहा, "अहा, जरा आराम करन दा न, कित्ती थकी ह!"

मा ने कुसुम का हाथ पकडकर उसे खाट से नीचे झटक दिया, खीचती हुई बाहर ल गई।

अइया का साहस कम नही था। मुह मे एक भी दात न था। इतनी दुबली पतली काया, पर आखा मे न जाने कहा की चमक, तजी से बहू क पास जाकर बोली, मेरी कसम तुम को, अपना गुस्सा मुन्नी पर दिखाना। खबरदार, कुसुम को अगर कुछ कहा! जा कुछ कहना है मुझे कहा।"

लखनऊ शहर क उस चवबगलिए के एक बगले म धीमे धीमे यह सब पिछले एक साल से हो रहा था। इसके पहले अइया अपने छोटे लडक मदन गोपाल के परिवार के साथ कानपुर मे थी। उसस भी पहले अइया अपने गाव म रहती थी—माझेताल जिला फर्जाबाद, डाकखाना सिमरी बाजार।

आज करीब चालीस बयालीस साल पहले की बात है बाईस साल की उम्र म विधवा अइया ने अपने उसी गाव माझेताल मे ही रहकर अपने दोना लडका—मदन गोपाल मिश्र और रामगोपाल मिश्र को एम०ए० तक पढाया था। अइया सिमरी बाजार की कन्या पाठशाला मे अध्यापिका थी। कुल दस बीघे खेत थे। एक ओर खुद खेतीबारी का काम देखती थी, दूसरी ओर रोज तीन कोस की दूरी पर पाठशाला की वह नौकरी करती थी।

सो, बडा बेटा रामगोपाल हुआ डिप्टीकलक्टर और छोटा हुआ आबकारी महकमे म इस्पेक्टर।

आज वही रामगोपाल डिप्टीकलक्टर से ज्वाइंट सक्रेटरी होकरस च बगलिए के एक बगले में सपरिवार रह रहा है। तीन सतानें हैं रामगोपाल की। बड़ा बेटा एम० ए० पास कर 'क्पीटीशन' मे बैठने की तैयारी कर रहा है। मझला बी० ए० फाइनल मे है और सबसे छोटी है वही कुसुम दसवी कक्षा मे पढ रही है।

अइया की आदत कह या स्वभाव, वह घर के भीतर नही बैठ सकती। बस या तो घर के बरामदे में बैठेंगी या दरवाजे पर। वह भी किसी कुर्सी मोढे पर नही जमीन पर भी नग फश पर। मेज-कुर्सी, सोफा-टेबल आदि से इ हे कोई रुचि या लगाव नही। बस, सबसे प्यारी है जमीन, धम्म से बैठ जाएगी। इ ही बातो पर छोटे लडके मदन गोपाल के मझले लडके विजय ने अइया के ऊपर दो बार हाथ उठा दिया था। मदन गोपाल को भी असुविधा होने लगी थी माई से। मदन गोपाल की पत्नी शांति को कष्ट होने लगा था सासुजी से। पर वाह रे अइया, कभी किसी से कोई शिकायत नही। कोई गिला शिकवा नही। जो मिला वही स्वीकार, जो नही मिला वह भी स्वीकार। जैसे कही कोई अधिकार नहीं। केवल कत्तव्य। दिन भर मे न जाने कितनी बार उनके मुह से निकलता, 'हानि लाभ, जीवन मरण जस-अपजस विधि हाथ।'"

बड़े लडके रामगोपाल बड़े प्रेम और विश्वास से माई को कानपुर से लखनऊ ले आए थे। यू माई का दोनो बेटो के घर आना जाना तो लगा ही रहता था। पर जब से अइया का अपने गाव-गढी से सबध टूटा, तब से वह अपने वही दोना बेटे, बेटो की बहुए और उनके बच्चे, वही सारा ससार।

डिनर टेबल पर कुसुम को बिठाकर मम्मी ने कहा "मैनस सीखो, चुपचाप डिनर टेबल पर खाना खाओ।'

कुसुम बोली "अइया ने आज सुबह से कुछ नही खाया है।'

तुझे कैसे मालूम ?

अइया का मुह देखकर '

"कितनी बार कहा है, अइया-फइया मत कहा करो। सीधे से दादी कहो, मगर देहाती कहीं के ! सीधे से खाती हो या नहीं ?"

कुसुम चुपचाप खड़ी थी। उसकी आखें आसुओं से भरती जा रही थी। अइया ने आकर कुसुम को सभाल लिया। "चल कुसुम, यही खा ले। मा की बात नही टालते। ले खा ले, मेरी प्यारी कुसुम !'

अइया के हाथ से अन्न का वह कौर मुह मे लेकर कुसुम अइया का मुह निहारने लगी। मम्मी वहा से हट गई थी।

कुसुम अइया के पास बैठी खाती हुई सोचने लगी हाय कैसी सीधी-सादी हैं अइया ! कही कोई विरोध नही। कही कोई गाठ नही। जो भी कुछ कहता है, अइया कैसे चुपचाप मान जाती हैं। कैसे सब कुछ सह लेती हैं, किसी के खिलाफ मुह तक नही खोलती।

कुसुम के सामने जस कोई तसवीर खुली हो। अइया न लखनऊ के इस बगल म आकर जब पहली बार अपने ठाकुरजी का भोग लगाया था और सारे घर को प्रसाद बाटा था तब मम्मी को अच्छा नही लगा था। मम्मी ने पापा से कहा था, "यह क्या तमाशा है। खुलेआम इस तरह प्रसाद बाटा जाए। पूजा-पाठ व्यक्तिगत चीज है, इससे दूसरो को क्यो जोड़ा जाए ? देखो न ड्राइग रूम मे उस समय कितने लोग बैठे थे। धड़ाम से प्रसाद लिये ड्राइग रूम मे घुस गइ। यह कोई अच्छी बात थोडे ही है। कोई क्या कहेगा मिश्राजी का परिवार कितना देहाती है ! वह कोई गाव तो है नहीं। सारा कुछ तो मुझे देखना पडता है।"

पापा ने अइया से तब कहा था ' माई देख, ठाकुरजी का भोग तो ठीक है। पर इस तरह प्रसाद बाटना ठीक नही है। तुम्हारी बहू जी ठीक कहती हैं माई, चुपचाप ठाकुरजी का भोग अपन कमरे मे ही लगा लिया करो।"

"और प्रसाद ?"

"अरे प्रसाद तो प्रसाद है, जिसकी इच्छा होगी, वह खुद तुम्हारे पास आकर ले लेगा।"

उस दिन से अइया चुपचाप अपने कमरे म ही अपन ठाकुरजी को भोग चढाती हैं और प्रसाद लेती है कुसुम, पूरे घर में केवल कुसुम और अइया प्रसाद बाटती हैं बगले म आती चिडियो को, कमरे में रेंगती चीटियो को !

फिर दूसरी समस्या घर मे यह उठी कि बगले में आन-जान वाले लोगो, खासकर उनकी स्त्रियो के सामने अइया आये या नही ।

मम्मी और पापा दोनो इस बात पर सहमत हो गए कि बूढी मा का दूसरा के सामन आने-जान का क्या मतलब ! पर पापा ने मम्मी समेत पूरे घर को सचत किया कि माई को इस बात का पता नही लगना चाहिए । हा, यह सब व्यवहार बहुत होशियारी और चतुराई से होना चाहिए, हा !

पर उस बगल में घर परिवार मे सबस बडी समस्या उठी अइया के रामायण पाठ मे ।

सब कुछ छोड सकती थी अइया पर रामायण पाठ नही छोड सकती थी । इस बात का कवल कुसुम जानती है । धीरे धीरे गाकर रामायण पाठ करना फिर भावविभोर होकर अइया का यह आत्मनिवेदन कैसा हृदय-ग्राही था —

कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान
राम लखन मा जानकी सदा करहु कल्यान ।
जो जन जहा स आयहु कथा सुनो मन लाय
अपन अपन भवन को हरषि जाहु सुख पाय

पहले अइया स कहा गया कि सध्या समय रामायण पाठ नही हो सकता । साहब दफ्तर स थक मादे घर आत हैं । उन्हे आराम और शान्ति चाहिए ।

हा ठीक कहती हो, बहू ! मेरे बटवा का आराम और शांति चाहिए !" अइया मान गइ । सझौती समय से रामायण पाठ का समय बदलकर रात क साढे आठ बजे कर लिया ।

कुछ दिनो चला कि बडे भइया ने कहा कि उन्हे डिस्टब' होता है । कम्पीटीशन की पढाई है, कोई मजाक नही है ।

इस बात पर कुसुम और बडे भइया के बीच झगडा हुआ था । कुसुम

के मुह स जस ही निकला कि पॉप म्युजिक स उन्ह डिस्टब नही होता, तो पापा सहित पूरे घर ने बडे भइया का पक्ष लिया था, अपनी-अपनी पसद है ! बडे भइया की जिदगी का सवाल है ! कोई गलत कहेगा ! क्या है रामायण पाठ मे वही रोज-रोज कथा विसरजन होत है !" आसपास के लोग हमारा मजाक उडाते हैं !

"तो सोने स पहले भइया चुपचाप पाठ कर लिया करें ?"

' चुपचाप ?"

"हा माई, चुपचाप !"

'चुपचाप कसे, बेटवा ?"

' मन मे !"

' मन म मन क्या चीज है रे ?'

न जाने कितने दिनो, कितने वर्षों बाद मा बेटे मे उस दिन अचानक सवाद छिड गया था ।

"बडका बेटवा, बता न मन क्या चीज है ?'

बडे बेटवा ज्वाइट सेक्रेट्री रामगोपाल मिश्र, माई का मुह देखते रह गए ।

' मन कही चुपचाप रहता है, बेटवा !'

"तो माई ?

' वही राम चाहें तो मन कटे । मन न कट तो कुक्कुर-बानर की तरह मनुष्य मारा मारा फिरे !"

बडे बेटा रामगोपाल माई के सामने ठहर नही पाए । अपनी पत्नी के सामन खीम निपोरकर बोले 'बहुत बोलने लगी है माई, लगता है अब ज्यादा दिन की मेहमान नही है ।"

पत्नी ने अजब ढग से कहा ' ऐसा क्यो मुह से निकालत हो । बडी-बुजुग हैं, परम पूज्य हैं ! तुम्हारी मा हैं तो मेरी भी मा हैं बडे बूढो का साया !"

पतिदेव पत्नी का मुह देखने लगे ।

एक अजीब ठडा सन्नाटा उनके बीच खिच गया । आईने के सामने खडे होकर अपनी मूछों म सफेद बाल काटते हुए मिश्रजी न कहा, ' जितनी

इच्छा थी माई की सेवा नही कर सका। चारो धाम भी नही करा सका सिर्फ बद्रीनाथ और जगन्नाथ धाम। नौकरी ऐसी है कि । माई के साथ भी नहीं उठ-बैठ पाता। इतने दिनो से घर म है। हमारे साथ है। पर माई हम क्या दे पाए माई का।"

पत्नी बोली, 'तो किसने मना किया है?'

पति ने कहा, 'यही तो समझ मे नहीं आता सुधा, किसने मना किया है। हमारे बीच म यह अदृश्य बाधा कहा है, क्यो है? माई के साथ हमारा व्यवहार ।" पति अचानक पत्नी के सामने से हट गए।

सुधा ने कहा, सुनो, माई न कुछ कहा है तुमसे?"

'नही तो।"

'नही, कुछ जरूर कहा है।"

"सुधा, माई कहा कुछ कहती हैं। एक साल से ज्यादा हो गया माई को हमारे साथ रहते। बताओ, बोलो, कभी किसी को कुछ कहा है माई ने?"

"हा, सो तो है।"

"हम सबने केवल अपनी सुविधा देखी है।"

सुधा को यह बात अच्छी नही लगी, 'क्या मतलब?'

"कुछ नही।"

सुधा ने कहा, "तुम समझते हो अइया सिर्फ तुम्हारी मा हैं?'

'इसमे समझना क्या है।"

'क्या कहा?"

"मुझे जाना है। दफ्तर के बाद एक मीटिंग भी आज है।"

मिश्रजी जाने लगे। सुधा ने पति के सामने लौंग इलायची बढाते हुए कहा, जिसे चौबीस घंटे घर मे रहना पडता है जिसे सब कुछ देखना पडता है अपने बच्चों के भविष्य से लेकर पास-पडोस तक, उसकी मजबूरी भी तो कोई देखे।

'मैंने तो ऐसा कुछ नही कहा।"

'कहा नही, उस दिन नही कहा कि माई के प्रति हमारा व्यवहार ठीक नहीं है। क्या ठीक नहा है? तुम खुद अपनी माई के साथ क्या नही

उठते बठते ? माई के साथ रहो, पूरा एक दिन एक रात। क्यो नही रहत ? किसन मना किया है ? इतनी छुट्टिया तो बाकी हैं माई को साथ लेकर तीथयात्रा पर क्यो नही जात। हुअ, बडा आसान है फतवा देना, हमारा व्यवहार ठीक नही है।"

सहसा मिश्रजी ने देखा, माई आकर पीछे खडी है।

' माई !"

' का बात है, बेटवा ? बहू का बात है ?'

"कुछ नही, माई ! अच्छा मैं जा रहा हू।

"नही रुक जा बेटवा ! मरी वजह स काइ कष्ट है ?"

' क्यो, माई ?"

"अगर मेरी वजह स कोई कष्ट हो गया तो मरा जीना बेकार है।"

' और तुम्ह कष्ट हा गया माई, ता हमारा जीना बकार है।" मिश्र जी हसते हुए तेजी से बाहर निकल गए। माई क चहरे पर प्रसन्नता छा गई।

'क्या बहू बेटवा का बात कर रहा था ?"

"ऐसे ही माताजी कोई खास बात नही।"

' मेरी बातें कर रह थ तुम लोग। मैंने सब सुना है। बहू, तुमन बिलकुल सही कहा बडा आसान है फतवा देना तुम पर कितनी जिम्मेदारी है। सब कुछ तुम्ह ही तो देखना है। सब मेरे ही बच्चे तो हैं। सब कुछ मेरा है बहू ! सबका मेरा प्यार आशीष !"

कुर्सी पर बिठाकर सुधा बहू अइया के सिर पर तेल लगाने लगी।

अइया बोली ' कभी किसी चीज का दुख नही करना, बहू ! मुझस कुछ छिपाना नही। हम तो पके फल हैं, किसी दिन डाल से छूट गए।"

सुधा बहू की आखे भर आईं। कुछ कहना चाहा पर कठ से फूटा नही। तभी स्कूल से कुसुम आयी मम्मी, अइया की चोटी मैं करूगी।"

कुसुम ने अइया का सिर चूमते हुए कहा, ' अइया, जब तुम मेरी उम्र की थी, कसी थी ?"

'तब मेरी शादी हो चुकी थी !" अइया हो-हो करक हसन लगी थी।

दशहरे का दिन था। शाम का वक्त था। अइया का कमरा भीतर से बन्द था। कुसुम ने आवाज दी, "अइया ! ओ अइया !"

कोई जवाब नहीं।

हल्के से किवाड खोलकर कुसुम अंदर गई। अइया के सामने रामायण खुली थी सुंदरकाण्ड। अइया आखें मूदें चुपचाप बैठी थीं।

कुसुम को अपने पास अनुभव कर अइया की आखें खुल गइ।

'अइया, क्या कर रही थी ?"

'पाठ कर रही थी "

"चुपचाप आखें मूदे ?'

हां रे कुसू चुपचाप मन ही मन रामायण पाठ "

'क्यो ?'

ऐसे ही करना चाहिए किसी को विघ्न नहीं होता।"

"विघ्न ?'

'हे राम !"

'मतलब, पापा ने कहा है मम्मी ने कहा है भइया ने "

कुसुम के तप्त मुह पर अइया ने हाथ रख दिया, "नहीं रे कुसू शोर नहीं करते। बड़ा भइया पढ रहा है। बड़ा अफसर का इम्तिहान पास करेगा। तेरी मम्मी अभी सोई है। थक जाती है। कितना काम करती है। तेरे पापा ड्राइंग रूम म दोस्तो क साथ बैठे हैं। अरे, हमारा क्या है रे !'

ऐसा रोज होने लगा। सध्या यही साढ़े सात बजे। अइया अपने बंद कमरे म चुपचाप मन-ही मन रामायण पाठ करती। मन-ही-मन निःशब्द कहती—

> कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान,
> राम लखन सिय जानकी सदा करो कल्यान।
> प्रभुसन कहिया दण्डवत तुम्हें कहैं कर जोरि
> बार-बार रघुनाथ कहि सुरत करायो मोरि।
> श्राता निज निज धाम गए प्रभु गए कैलास,
> हनुमान प्रभु पह गए विनवत तुलसीदास।

जा अक्षर जगदम्बिका भूल परे कछु होय
आदि शक्ति भूधर सुता छिमा कियो सब सोय

कुसुम को पता है अइया कब सोती हैं, कब जागती हैं। कब उन्हें भूख लगती है। कब उन्हें चुपचाप रहना अच्छा लगता है। कब वह बातें करना चाहती हैं पर इधर कुसुम देख रही है, अइया का सब कुछ व्यतिक्रम होने लगा है।

कुसुम अइया के साथ ही सोने लगी है। पापा और मम्मी अइया पर पूरा ध्यान देने लगे हैं।

जाड़े के दिन बीत रहे थे। गहरी सोई हुई रात में सहसा कुसुम को लगा कि अइया कुछ गा रही हैं। उसने टेबल लैम्प जलाकर देखा, अइया पलंग पर बैठी ध्यानमग्न निहायत हल्के स्वरों से अदभुत सुर में गा रही हैं—

जो जन जहां से आयहु कथा सुनी मन लाय
अपने अपने भवन को हरषि जाहु सुख पाय।
अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहें निर्वान
जन्म-जन्म प्रभुपद भगति यह वरदान न आन

कुसुम ने देखा अइया न जाने किस अतल गहराई में डूबी हुई हैं। कमरे से बाहर चारों तरफ गहरा अंधेरा था। खुली खिड़कियों से निरभ्र आकाश में तारे छिटके हुए थे। पछुआ हवा चल रही थी। अइया के सफेद केश खूंटी पर टंगे अइया के कपड़े अनेक तरह की छाया फैलाते हुए रह रहकर कांप उठते थे। अइया कितनी सुंदर लग रही थी। वृद्धापन की क्षीणता ने अइया पर एक अजब आवरण चढ़ा दिया था। लगता था जैसे अइया संसार से बहुत दूर जैसे किसी अन्य लोक में हैं। कुसुम को अचानक लगा अइया जैसा अकेला प्राणी संसार में कोई नहीं है।

धीरे धीरे अइया का स्वर टूटने लगा। अइया बिलकुल चुप हो गई।

"अइया!" कुसुम ने बढ़कर अइया को थाम लिया। उनका सिर लुढ़कने लगा था।

"अइया!"

अइया की आँखें न जाने किस असीम मोह में मग्न हुई थी। अइया का दायाँ हाथ कुसुम के माथे पर काँप रहा था।

अम्मा को अपने अंक में सम्भाले कुसुम सिसकने लगी। अइया अब अपने उस पार्थिव शरीर में नहीं रह गई थी फिर भी कुसुम को चिंता हुई कि अइया का कहीं किसी प्रकार का विघ्न न हो। कुसुम के पूरे अन्तर्लोक में अइया के मीठे स्वर गरज रहे थे—

कथा विसर्जन होत है सुनो वीर हनुमान,
राम लखन औ जानकी सदा करहु कल्यान
जो जन जहाँ से आयहु कथा सुनी मन लाय,
अपने अपने भवन को हरषि जाहु सुख पाय ।

पूरे घर परिवार में अइया इतनी फैली हुई हैं इतने गहरे उतरी हुई हैं। यह सबको अइया के स्वर्गवास के बाद पता चला। दोनों बेटा और बहुओं ने बड़े धूमधाम से अइया के क्रिया-कर्म किए। गाव गढी, सारे नाते-रिश्तेदार अइया के कर्म में आए।

बड़े लड़के डिप्टी साहब रामगोपाल पूरे दो महीने की छुट्टी लेकर माई का अस्थि विसर्जन करने कहाँ-कहाँ नहीं गए—हरिद्वार, रामेश्वर, कन्याकुमारी, द्वारिका, प्रयागराज

माई बिना लखनऊ का वह बंगला इतना उदास होगा, इस तरह काटने दौड़ेगा, पापा मम्मी को पता नहीं था। मम्मी और पापा ने तय किया कि लखनऊ से कहीं और तबादला हो जाए।

दिल्ली अच्छी जगह है, वहाँ सब कुछ अपने आप भूल जाता है। बच्चों के भविष्य के लिए भी अच्छा रहेगा।

काफी दौड़ धूप, मेहनत कोशिशों के बाद रामगोपाल मिश्र को दिल्ली में स्थान मिल गया।

मम्मी बहुत खुश दोनों बेटे सबसे ज्यादा खुश। कुसुम अपनी अइया को एक क्षण भी नहीं भूल पा रही थी। वह चुप रहने लगी थी।

नई दिल्ली के सरकारी बंगले को नए सिरे से पापा मम्मी ने सजाया।

दोनों भइया बहुत खुश थे।

नई दिल्ली के उस नए घर में एक दिन बीता था। रात को अचानक

मम्मी की आख खुली। पति को जगाकर कहा, "सुनो, यह आवाज़ कहा से आ रही है, देखो तो !"

पति पत्नी बगल के कमरे से ड्राइग रूम मे गए। चारो तरफ अधेरा था। स्टोर से सटा हुआ एक छोटा सा कमरा था। पिताजी ने रोशनी जलाकर देखा—कुसुम आख मूद रामायण पाठ कर रही है।

यह क्या है ?" दोनो ठगे से आश्चर्यचकित देखते रह गए।

कुसुम ने यह गाते हुए पापा और मम्मी को देखा—कथा बिसरजन होत है सुनो वीर हनुमान

"यह क्या तमाशा ह ?" गुस्से मे मम्मी ने कहा।

कुमू, यह क्या करती हो, बेटी !" पापा ने बेहद ठडे स्वरो मे कहा।

कुसुम के ओठो से अबाध स्वर फूट रहे थे—*भ्राता निज निज धाम* गए, प्रभु गए कलाश, हनूमान प्रभु पद गये विनवत तुलसीदास !

"मै अपने पात्रो द्वारा वनाया गया पात्र हू"

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के साथ अमृता प्रीतम की अतरग वातचीत

अमृता दोस्त पहली बात यह पूछना चाहूगी कि हाथ मे कलम पकडने का हादसा आपकी जिदगी मे कैसे हुआ ?

लाल (दोस्त' शब्द सुनकर मेरी सजल आखें अमृता जी के चरणों की ओर झुक गई। कलम पकडने की अपनी स्थिति से काप गया।) जिस चित्त से आपने 'दोस्त' कहा, यह वही श्रेष्ठ सुदर चित्त है जिसमे यह पूछने की क्षमता है तत किम' सच, ऐसा प्रश्न, इस सबोधन से आज तक किसी ने नही किया। भारतीय सस्कृति मे इसी चित्त ने कहा था—वेदाहम'—मैं जानता हू। ऐसा है वह जो सबके सुनने योग्य है। सच पूज्य अमृता, आप जो जानती हैं, वह मुझसे पूछकर एक गुरु की तरह मुझमे आत्मज्ञान का चिराग जलाना चाहती हैं।

उत्तर प्रदेश के जिला बस्ती के एक छोटे से गाव जलालपुर की एक पतली-सी नदी मनोरमा के तट पर बालक रूप मे एक स्वर सुना था—यहा लोग 'अपने आप' को ढूढते हैं और प्रसन्नमुख कहते हैं—सभी को आना होगा, अपने' को ढूढने। बस्ती मे प्रारभिक शिक्षा प्राप्त कर उस समय की माधुरी' पत्रिका मे यह पढकर 'आत्मान विद्धि—अपने को

जाना, प्राप्त करो' कई रात तक मुझे नींद नहीं आई। 'अपने को ढूंढो फिर उसे प्राप्त करो' इसका क्या मतलब है ? और मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के जीवन में क्या अर्थ ? मेरी ऐसी स्थिति भी नहीं कि मैं इंटर के बाद आगे की शिक्षा के लिए कहीं बाहर निकल सकूं। पर पता नहीं कैसे, किस अज्ञात शक्ति और प्रेरणा से मैं एक दिन अपने घेरे से बाहर निकल पड़ा। धरती में अनजान नगर इलाहाबाद। पहले से कुछ भी पता नहीं था। न कोई संगी-साथी, न कोई मददगार, न कोई रास्ता सुझाने-बताने वाला। यही दुर्गम स्थिति, और विशेष परिस्थिति में मुझे बी० ए० प्रवेश का आदेश मिला। यह अगस्त सन् छियालीस की बात है। मेरे पास एक रुपया भी नहीं और एक सप्ताह के भीतर मुझे यूनिवर्सिटी में प्रवेश के लिए कुल दो सौ दस रुपये की दरकार थी।

मेरे पास कोई रास्ता नहीं था। मैं क्या करता ? फिर मुझे वही स्वर याद आया। सभी को जाना होगा 'अपने' को ढूंढने। वह किसी विशेष मन की, व्यक्ति की, परिस्थिति की आवाज नहीं थी। मेरे अंतस के स्वाव से फूटी हुई आवाज थी कि मैं अपने आपको पाने के लिए जब अपनी सीमाओं से बाहर निकला हूं, तो सिर्फ अकेला मैं ही हूं अपना। पर क्या कर सकता हूं इतने कम समय में उतने रुपये प्राप्त करने के लिए ? उस समय 'पोस्टल स्ट्राइक' चल रही थी। चिट्ठी-पत्री, तार, फोन, सब ठप्प। वह स्ट्राइक पूरे देश के जीवन को तथा मुझे असहाय बना रही थी। तन मुझ पर आघात कर रहा था। लगने लगा था 'आवाज' का तो कहीं अंत नहीं। कितनी आवाजें, स्वरों का कोलाहल आकाश को हिला रहा है। हां, यह बात तो है। बात सच भी है। सब प्रत्यक्ष भी है। सब तर्कयुक्त है। पर

पर फिर भी, फिर भी, मेरे भीतर की एक आवाज क्षीण नहीं होती। मैं अपने से बाहर निकलता हूं तो केवल 'अपने' ही सहारे। अपने उस परम अकेलेपन में कांपते हुए हाथ से पहली बार अपनी वह लेखनी पकड़ी थी, जिसने लगातार तीन रातों में किसी बंद दुकान के बरामदे में बैठाकर पहला उपन्यास लिखवाया था—'रक्तदान'। उसी पांडुलिपि को दो सौ तीस रुपये में खरीदा था यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, के प्रमोद पुस्तक प्रकाशन ने।

कलम पकडने के उन क्षणो ने तब से आज तक मुझे बार-बार याद दिलाते रहे हैं कि कलम पकडना अपने आप मे एक आदर्श कर्म है। उसके आदर्श को सामने रखकर अपनी सारी छोटी छोटी वासनाओ को अनुशासित करता है। अपनी कलम को जीवन के ऐसे आचार-अनुष्ठान से जोडा, जिससे 'अपने' को ढूढने और प्राप्त करने का सुफल हाथ लगे।

अमता खलील जिब्रान ने एक बार भरे हुए मन से कहा था—'मैं एक ऐसे पेड की तरह हू, जो अपने पके हुए फल के भार से थक गया। चाहता हू, कोई आए और इस फल को तोड ले चख ले। और मैं इसके भार से मुक्त हो जाऊ।' जरूर कभी ऐसा एहसास आपको हुआ होगा। कब हुआ और किस रचना की सूरत मे अपनी आत्मा की अमीरी को बाट कर एक राहत महसूस हुई ?

लाल गाव म मरे घर क सामने मैदान म आम की बगिया म एक वृक्ष था आम का। बिलकुल हरा भरा, पूरा, सुदर और स्वस्थ। मैं तब करीब सात वर्ष का था। उस पेड के नीचे बैठा खेल रहा था। मरी दादी जी दौडी हुई आइ और मुझे उस वृक्ष के नीचे से खीचती हुई बोली—"खबरदार, इस वृक्ष के नीचे कभी मत खेलना। यह असगुन है, अभागा पेड है, इसमे फल नही आता।"

जिसमे फल नही, वह अभागा, असगुन वृक्ष, उसके नीचे कोई नही जाता। उसकी हरी भरी छाया म कोई नही बठता। यह कैसी बात है! पर इस पर पछी तो बैठते हैं। वह कितना छायादार है। पर छाया स क्या, अगर फल नही तो सब निष्फल। मैं दूर स ही उस आम के सुदर वृक्ष को निहारता और सोचता रह जाता, यह कैसी अजीब बात है। फल नही तो जैसे वह आम का वृक्ष ही नही।

तब मै दस साल का हुआ और देखा उस पेड म बौर आए हैं और वह पेड एक दिन फलो स भर गया। बहुत सारे लोग आए उस पेड के नीचे और उसर फलो को देखकर प्रसन्न हो गए।

अब तक उस वृक्ष का कोई मालिक नही था, अब सारा गाव उसका मालिक हो गया। जो आता ढेला मारकर फल तोड ले जाता। बच्चे, जवान उस पर चढे रहते। और दिनभर उस पर ढेले, ईंट-पत्थर स मार

पडती। मार के जवाब मे अब वह फल देता। बडा ही मीठा फल। फल आने से अब उसका अभागापन दूर हो गया। अब वह सगुन वृक्ष हो गया।

तब फल आने से वह इतना पिटा इतना तोडा और लूटा गया कि अगले दो वर्षों तक उसमे फिर फल नही लगे। तब वह फिर अभागा हो गया। जब तीसरे वर्ष फिर उसमे फल आए तो वह फिर सुभागा हो गया।

इस घटना की मेरे किशोर हृदय पर बडी गहरी छाप पडी। तब से मैं बराबर सोचने लगा कि वृक्ष अपने आप मे कुछ नही है। उसका सारा मूल्य उसके फल मे है। यह कैसा स्वार्थ है? पर उस वृक्ष का भी तो अपना स्वार्थ है। तो स्वार्थ ही फल है।

जब बडा हुआ, पढ लिखकर और जीवन का थोडा अनुभव पाकर वयस्क हुआ तो सोचने लगा—यह फल क्या है?

फल माने नतीजा, परिणाम। उस वृक्ष का नतीजा और परिणाम तो यह था कि फल आते ही उसे पीटा जाता। उसे इतनी चोट मिलती। पर वह तो परिणाम था उस फल का। तो फल क्या है? जो जिसका श्रेष्ठतम है वह दूसरो को दे। छाया, उसकी हरी भरी पत्तिया, उसकी लकडी यह क्या उसका फल नही है? वह वृक्ष, उसका अपना निराला अस्तित्व, यह क्या उसका फल नही है? नही, फल वह है जो उसमे फलित हो उसके भीतर से बाहर आ लगे। और लोग उसका उपभोग कर सकें। पर उस फल के प्रसग मे, उस वृक्ष का भोग क्या है? उसे क्या मिला अपने उस फल से?

वृक्ष और फल के इस प्रश्न पर सोचते-साचते, अपने जीवन, समाज, राजनीति, अर्थनीति को देखते-दखते मुझे एक बडी चीज हाथ लगी। ऐसी चीज जो हमारे जीवन, चरित्र और हमारी सस्कृति की बुनियाद है। इससे अचानक मुझे अपने भारतीय चरित्र और उसके जीवन-दर्शन का रहस्य प्राप्त हुआ।

जब किसी वृक्ष मे फूल खिल उठता है तब लगता है जैसे वह फूल ही वृक्ष का एकमात्र लक्ष्य हो। लेकिन यह बात उस फूल मे छिपी रहती है कि वह फूल दरअसल फल लगने का एक उपलक्ष्य मात्र है। फिर भी वह फूल अपने वर्तमान के गौरव मे आनदित रहता है। भविष्य उसे डराता

नही। और फूल से एक दिन फल लगने पर उस फल को देखकर लगता है जैसे वही अंतिम लक्ष्य हो वक्ष का। पर नही, वहा भी यह बात छिपी रहती है कि फल अपने गर्भ में भावी वंश का बीज पका रहा है। वृक्ष को फूल और फल को परिश्रम कहा करना पडता है वह तो आनद है, सौन्दर्य है, पराप्रकृति है जिसमे वह सहज ही अपनी भूमिका अदा कर रहा है। वृक्ष अपना स्वधर्म पूरा कर रहा है।

फल में जब रस भर जाता है, और उसका गूदा रस मे पककर तयार हो जाता है तब वह पका हुआ फल एक दिन अपने आप वृक्ष से अलग होकर पृथ्वी पर चू पडता है। अपने बीज को फिर उसी पृथ्वी मे दे देने के लिए ताकि एक नया वृक्ष उग सके। बीज, वंश फूल और फल अत मे फिर वही बीज यह है वृत्त और रचनागति जो संगीत की तरह अबाध गति से सुक्ष्म चल रहा है।

यही अहसास मुझे अक्सर रहा है कि मैं स्वय अपने गाव वाला वही पेड हू। उसकी जो गति रही है वही मेरी है। सिर्फ कुछ को छोडकर जिसे मैंने किसी और दबाव मे लिखा है बाकी जो लिखता हू वह स्वय रचना होती है सहज—जैसे उपन्यासो मे—बडी चपा छोटी चपा, मन-वृदावन' पुरुषोत्तम, नाटको मे—अधा कुआ' 'व्यक्तिगत', बलराम की तीर्थ यात्रा, कथा विसर्जन' आदि।

अमता आपकी रचना 'मन वृदावन' मुझे लगता है जैसे अतर्ध्वनि की तरह आपके भीतर से उठी है। क्या यह मात्र मेरा अहसास है या आपका भी ?

लाल आपका अहसास बिलकुल सही है। आपका अहसास मेरा अहसास है। यह ऐक्यबोध ही तो आपको इतना श्रेष्ठ ईमानदार लेखक बनाए रखता है। अपने चैतन्य को जो सभी के अन्दर म स्पन्दित पाते हैं वही तो ज्ञानी हैं। आप वही हैं, तभी अहसास की बात आप पूछ रही हैं, अमता जी।

अपनी बात कहू—मन वृदावन के प्रसग मे। मुझ जसे सहज—साधारण लेखक—'मन वृन्दावन' जसी कृतियो द्वारा ही अपना परिचय पहचान दे पाते हैं। अर्थात एक दूसरे के द्वारा—सुबंधु हिरण्यमयी, सुगन,

पतितराम के द्वारा। पृथ्वी पर ऐसे बहुत कम लेखक—रचनाकार या पुरुष हुए हैं जो अपने आप प्रकाशवान हैं जिनका आलोक प्रतिबिंबित आलोक नहीं। मेरा यही अहसास है। मैं अपने पात्रों के प्रतिबिंबित आलोक से प्रकाशवान हूं। मैं अपने पात्रों द्वारा बनाया गया पात्र, अपनी मिट्टी का पात्र हूं। यही अनुभूति मेरी अंतर्ध्वनि है जो 'मन-वृंदावन' जैसी रचनाओं में उठी है। पतितराम सुबंधु सगुन और हिरण्यमयी के ही प्रकाश में देखा है कि अपना मन अगर दिख जाए अपने आपको तो वह मन कट जाता है मन से मुक्ति ही वृंदावन है। अगर मन से मुक्ति नहीं मन में ही संसार में जो बदी है, फिर तो वही है कुरुक्षेत्र-लड़ाई का मैदान। नरक की दुनिया।

अमृता कुछ व्यक्तिगत प्रभाव आपकी आत्मा में समाए हुए होंगे कुछ उनकी बात कहिए। वे प्रभाव चाहे मुहब्बत की सूरत में या ममता के या चिंतन की सूरत में। लेकिन बात कुछ ऐसे क्षणों की कहिए जो आपके मन मस्तिष्क में अमिट हो गए हों।

लाल बचपन में, जब से होश हुआ तब से लेकर जीवन के करीब पच्चीस वर्षों तक जो हृदय से चाहा जिसकी कामना की, जिनके स्वप्न देखे वे कभी प्राप्त नहीं हुए। सोचा, शायद यही जीवन है। अपने आस-पास गौर से देखा, पाया कि प्राय सबकी यही दशा है। फिर तो पक्का हो गया कि यही जीवन है। एक क्षण अपनी कल्पना की एक सुंदरी मित्र से मैंने पूछा, 'आप अपने जीवन से सुखी हैं?' उन्होंने मेरे होठों को चिकोटी काटकर कहा, 'बताओ न, जीवन क्या है?'"

मैं एकटक उनका मुख निहार रहा था। वह अपने जूड़े से फूल खींचकर उसे तार-तार करती हुई कह रही थी, 'जो जहां है अपने जीवन में वह हर वक्त यही सोचता है कि वह अपनी सही जगह नहीं है, पर दरअसल वह अपनी सही जगह पर ही है।'

मेरी जिंदगी में वह क्षण ऐसा है जो मेरे अन्तस में अमिट है। मैं उस क्षण को प्रणाम और प्यार दोनों एक साथ करता हूं। उसी से प्रेरित-उत्साहित रहकर जैसे मैं अपने जीवन और लेखन को प्रणाम और प्यार दोनों एक साथ करता हूं। मैं जानता हूं वह क्षण मेरे लक्ष्मी के ललाट

पर एक काले तिल क भी बराबर नही है, पर मेरे आगे के जीवन मे वही क्षण मरी भूमि (चित्त) माता के नवजात श्यामल शिशु की तरह है। वही शिशु, बालक मेरा लखक मरा रचनाकार है। वह सब जहा होता है, करता है जो कुछ मैं लक्ष्मीनारायण लाल उसके माता पिता के रूप मे खडा रहता हू ताकि कोइ उसे किसी तरह की बाधा विघ्न न पहुचा सके। वह कही जरा भी डरे गिरे नही।

अमृता जी, कभी इसक ठीक उल्टा होता है। मैं कभी लिखता, करता, सोचता, पढता, देखता जीता हू तो मैं अपना वही शिशु, मैं वही अपना बालक मेरे 'मैं' की रखवाली और उसकी रक्षा मे सक्षावधि निश्चल खडा रहता है। वह मुच जगाए रखता है। मुझमे हठ करता है कि कोई कथा कहो, मरे लिए कोइ और नाटक लिखो। मुझे टहलाने ले चलो। मेरे साथ रहो—सच, वही मरी भूमि का रग है वही मेरी भूमि है मैं उसका रग हू। उसी ने मुझे अपनी भारतमाता म मिलाया। उसी ने मेरे अन्तस म धर्म संस्कृति क रहस्य खाले। उसी न मुझे महात्मा गाधी से मिलाया। अपन देश समाज और अपनेपन से परिचित कराया। उसन मुझे कितनी अमूल्य वस्तुए दी। भाव दिए जीवन मूल्य दिए, मित्र परिवार दिए जीवन की जानकारी, सतत जिज्ञासा भाव और न जान क्या क्या दिए।

तथाकथित आधुनिक लेखको क तत्वज्ञान पर मेरा कोई अधिकार नही। म एक निर्बाध मनुष्य हू—व्यक्ति स आगे गया हुआ। श्रद्धा विश्वास का जीता हुआ। विश्व पर जगत पर, मनुष्य मात्र पर अपन जीवन पर म कभी सदेह नही करता।

अमृता एक बहुत ही राजदान बात बताइए। कभी आपके सपना न कोई सकत देकर आपकी किसी अधूरी रचना को पूरी करन म मदद की है?

लाल मरा विश्वास है अनुभव भी कि जो स्वतत्र हैं, वही एक हो सकत हैं। वही हमे मिलन हैं यहा तक कि स्वप्न म भी। अपन जीवन म ऐसा दो बार हुआ है। पहली बात कलकत्ता क मित्र स्वर्गीय कमलाकात वर्मा से जुडी हुई है। पुरानी दिल्ली, नई दिल्ली की पृष्ठभूमि पर उपन्यास लिखने की सामग्री जुट रहा था। अनुसधान, शोध-कार्य पूरा हो चुका था। कुछ लिखकर पूरा भी कर चुका था। न कोई उचित नाम सूझ रहा था, न वह

केन्द्र बिंदु पा रहा था, जहा से उपन्यास की कथा, पात्र-रचना का स्वरूप दे सकें। तब कमलाकात जी जो अपने समय के प्रसिद्ध कहानीकार थे, वह जब भी दिल्ली आते, सगीतशास्त्र मे श्रुतियो पर शोध काय के सिल-सिले में, कृपाकर ईस्ट पटल नगर के मेरे उस पुराने निवास पर ही ठहरते। उनसे हम रात को तुलसी के भजन सुनते। खासकर 'श्रीरामचद्र कृपाल भजुमन हरण भवभय दारुणम्' का गायन। अजब सगीत स्वर मे गाते हारमोनियम बजाकर। मैंने चाहकर भी अपने उपन्यास की समस्या उन्हे नही बताई। एक रात सपने म वही कमलाकात जी आए। न जाने किसी भाषा म बोले—बताओ लाल किस चीज़ का दान सबसे बडा दान है? उन्होने जवाब दिया—सबसे बडा दान अहकार का होता है। प्रेम मे अगर किसी भी ओर अहकार है तो वह अपवित्र है।

मेरे उपन्यास का उन्होने सकेत भाषा म केंद्र बिंदु ही नही दिया बल्कि उसका नामकरण भी कर दिया, प्रेम अपवित्र नदी।'

दूसरी बात 1977 की है। जिस दिन मुझे यह प्रश्न अपने आपसे प्राप्त हुआ कि यह जो हमारा वतमान राज्य है राजनीति है, यह है क्या चीज? राज्य के नाम पर जो राजनीति चल रही है इसका हमारे जीवन से देश से, समय से क्या रिश्ता है? क्या प्रसग है और क्या अथ है? अगर यह कहना मेरे लिए बडबोलापन न समझा जाए तो मुझे यह कहने की अनुमति दें कि जैसे सिद्धाथ के सामने यह प्रश्न उनके भीतर से उनके सामने आया था, कि यह जीवन क्या है, जगत क्या है—ठीक उसी प्रकार मेरे सामने मेरे भीतर से यह प्रश्न आया कि यह हमारी राजनीति क्या है? इसका हमारे देश से क्या मतलब?

यह प्रश्न तब मेरे भीतर अपना पूर्ण स्वरूप नही ले सका था, जब मैं जयप्रकाश नारायण का जीवन चरित्र लिख रहा था या बिहार आदोलन म जब मै उनके साथ था। मेरे भीतर इस प्रश्न ने अपना सपूर्ण स्वरूप प्राप्त किया 26 जून, 1975 की सुबह। इस प्रश्न के आमने सामने खडा होकर, इसके साक्षात्कार मे जितना कुछ पढा, सोचा, पाया, खोया उसे बता पाना कठिन है—शायद असभव है। परतु इस प्रश्न के सदभ म जो पहली बात मेरे हाथ लगी वह यह कि जब तक राज्य समाज के अधीन था, तब तक

राजनीति नही राज्यधम था, परतु जिस समय से राज्य समाज पर हावी हुआ, उस क्षण से राजनीति शुरू हुई। जहा जितना अभाव होगा, वहा उतनी ही राजनीति होगी। राजनीति का एकमात्र लक्ष्य है ताकत हासिल करना। शक्ति का स्रोत है मनुष्य और समाज—इनसे धीरे-धीरे इनकी शक्ति हथियाकर एक दिन राजनीति जिस सत्तावादी राज्य का रूप लेती है वहा मनुष्य और समाज अतत अपने हित, कल्याण और धम के स्वामित्व से हाथ धो बैठता है। आज भारतीय राजनीति का यही मूल चरित्र है। इस चरित्र में केवल 'राज है, नीति' गायब होती चली गई है। यहा इस क्षेत्र में आकर हर कोई जैसे पश्चिम का 'किंग' बनना चाहता है। भारत का राजा नही। ऐसा क्यो हुआ? अगरेजो ने इस देश को जो राज व्यवस्था दी, उसका केवल एक ही लक्ष्य था कि उस व्यवस्था से वे इस देश पर राज करें—और राज्य का केवल यही उद्देश्य था कि इस देश को वे लूटें और हर तरह स यहा की जनता का शोषण करें।

इस विषय-वस्तु पर मैं अपना लेखन काय सपन्न कर चुका था। पर मुझे पुस्तक के लिए इसका उचित नाम नही सूझ रहा था।

नागपुर के मेरे अभिन्न मित्र, प्रख्यात लेखक पत्रकार, हिंदी सेवी अनत गोपाल शेवडे जी एक रात सपने म आए। मुझे इस क्षण भी उस सुगधि की अनुभूति हो रही है मेरे पास आते ही कमरा चदन की गध स भर गया। उन्होंने पुस्तक का नामकरण किया—निमूल वृक्ष का फल और अदृश्य हो गए। मेरी आख खुली तब भी उन्हे ढूढता रहा। आज भी, जब ये दोनो मित्र इस प्रत्यक्ष जगत म नही हैं मैं इन्हे नही भूल पाता।

पढ़ना चाहता हू मेरी दुनिया म तक करने के उस तरह के प्रश्न नही हैं जिस प्रश्न मेरे साथ के लोग पश्चिम का साहित्य पढ़कर करते हैं।

अमृता जिंदगी म जो किरदार आपने लिये, जरूर कभी उन लोगों ने आपकी रचना के आईने म खुद को देखा होगा। उनकी प्रतिक्रिया उन पर क्या हुई कुछ कहेंगे?

लास अमृता जी, मेरा लेखन गायन की तरह है जो प्रतिक्षण सबल

रहना है। जस गायन, ठीक उसी तरह मेरा लेखन है। इसका मूल कारण है कि मेरे सारे लेखन का आधार जीवन है। मेरे सारे पात्र जीवन के चरित्र हैं। जीवन से लिए गए चरित्र स जब पात्र बनाया जाता है, तब उसम बनाने वाले का भी अश स्वभावत आ ही जाता है। इसमे एक विशेष आकर्षण मेरे उन चरित्रो का हुआ है, जो मेरी रचनाओ के पात्र हैं, इस सबध मे तीन चरित्रो पात्रो, की चर्चा आवश्यक है। पहला 'अधा कुआ' नाटक की सूका, दूसरा—'सुदरी' कहानी की नायिका तीसरा मन व दावन' का मुखिया। सूका काकी मेरे गाव, मेरे घर के पिछवाड़े—की थी, वे पढ़ी लिखी। उन्हें न जाने किससे मेरे नाटक 'अधा कुआ' की कथा और सूका क बारे म पता चला। किसी ने उन्हे पढ़कर सुनाया था। सूका के रूप मे काकी अपने आपको देखकर, कई दिनो तक चुप ही गई थी। एक बार जब हमारी भेंट हुई तो पहले वह खिलखिलाकर हसी। फिर मुस्कान भरे मुख से बोली, ' ह हा लाल भइया ई नाटक हम पै लिखयो है ?"

' हा, क्यो काकी, काई गलत बात तो नाही लिखा ?"

मुह म अपने आचल का एक छोर भरकर वह चुप हो गईं। उनकी आखो से जो आसू बहत देखा, मेरे होश उड गए। उनके सामने खडा रह पाना सभव नही था। तब तक काकी भरे कठ स बोली, का तू हमरे दुख दद की बात कह हो ? नाही कौन कहि सक ऊ ?'

काकी हसने लगी थी। वह निमल हसी, जो डडो की मार से टूटे दातो और फटे होठो के बीच स उमड रही थी वह अपनी सकेत भाषा मे मुझसे कह रही थी—जो काइ मेरे चरित्र पर दोष लगाएगा तो वह दाप मुझे लगेगा। बताओ, क्या मेरे इतने आसू मेरी लज्जा नही ढकेंगे ?" साक्षात् काकी न अपने सूका नामक पात्र को आइन की तरह मेरे सामने रख दिया था। उसमे अपने आपको मैंने स्वय देखा—सूका क परो पर एक आसू की बूद ढुलक गई थी।

सुदरी कहानी की नायिका देखने म इतनी असुदर थी कि क्या कहू। आख छोटी बडी, रग काला, दात निकले हुए। न कोई गुण न शऊर। पति स लडाई। पति की मार, गाली गलौज। पर उसम एक गुण था। जो भी काम करती, उत्तम। अवगुण यही था कि जिसे एक बार देखा, उसी क

उत्पन्न राजनीति है भारत में लोकतंत्र या जनतंत्र की राजनीति नहीं। पश्चिम में उसकी अपनी डेमोक्रेसी और उसकी राजनीति का चरित्र स्वभावत आधुनिक है। परंतु वही चूंकि हमारी भारतीय मनीषा और सामाजिक बोध से बेमेल है, विपरीत है, फलत उसी राजनीति का चरित्र यहां मध्ययुगीन है। राजमहल या जेल, दो ही जगह है जहां हमारे यहां का राजनेता निवास करता है बल्कि जहां उसे निवास कराया जाता है। दोनो स्थानों पर सिपाही का पहरा रहता है। इसकी चरित्रगत विशेषताओं में आडंबर दरबारी सभ्यता, झूठ, और क्रूरता उल्लखनीय है। मध्य युग में कहीं एक तैमूर, एक नादिरशाह, एक बाबर, एक ...र लूटकर चला जाता था अब असंख्य छोटे छोटे तैमूर और नादिरशाह लगातार लूटते रहते हैं।

चाहे कोई सत्तादल में हो या प्रतिपक्ष के किसी भी दल में आज की हमारी राजनीति ने सबको अपनी जगह से उठाकर राजमहल की खिड़की के पास खड़ाकर दिया है। सबको परधर्मी और लालची बनाया है। यह राजनीति मनुष्य को बेहतर बनाने, गरीब की गरीबी मिटाने के नाम पर अपना व्यवसाय करती है। इसे पता है कि इसका अस्तित्व ही निर्भर है मनुष्य के दारिद्र्य, दु ख, विपत्ति, संकट और उसके अपमान पर।

भारत का राजनेता सबसे अधिक वाणी या भाषा का उपयोग करता है। वह तीन प्रकार की भाषा इस्तमाल करता है—आध्यात्मिक भाषा, क्रांतिकारी भाषा और बाजारू भाषा। पश्चिम का पत्रकार और राजनयिक इसकी भाषा से आश्चर्यचकित रह जाता है। उसकी समझ में कुछ नहीं आता। भारत के राजनेता और व्यापारी में पूरी तरह से समानता है। अगर असमानता है तो केवल एक—राजनेता बिना किसी माल के, पूंजी के अपना व्यापार करता है—इसीलिए इतनी बातें करता है सेवा', देश की सेवा' आदि और ध्यान रहे कि मनुष्य सेवा नहीं, यहां तक कि थपन स्वास्थ्य की सेवा नहीं, केवल देश-सेवा। और व्यापारी माल सामने रखकर अपना व्यापार करता है, और केवल 'लाभ' के लिए चुप्पी साधे रहता है।

इसके इस चरित्र का फल यह हुआ कि समाज के स्थान पर राज-व्यवस्था नहीं, राज्य शक्तिशाली हो गया है। व्यक्ति की जगह परिवेश दुर्दम और अजेय हो गया है। लोग राज्य से डिगने के लिए हर क्षेत्र में

'कैरियरिस्ट' बनने के लिए विवश हुए। इसलिए इस राजनीतिक परिवेश मे हर कोई 'मेरी मागें' की लिस्ट लिये घूम रहा है। वही परिवेश उत्तरोत्तर अधिक माग, अधिक इच्छा और अधिक भूख पैदा कर रहा है। और वही अपने से सघर्ष का नाटक भी रचाता है। वही दाता है, वही डाकू है वही नियता है। एक हाथ से लेना दूसरे से देना। एक ओर माग की स्थितिया पैदा करना दूसरी ओर लूट लेना।

अमृता आज ये तो मानना पडेगा कुछ लोग अक्षरो से प्यार करते है और कुछ लोग अक्षरो का व्यापार करते हैं। ये स्थितिया एक दूसरे के मुखालिफ हैं लेकिन इनके लिए नाम तो एक ही इस्तेमाल होता है—साहित्य।' आप कहिए इस नाम की आबरू का क्या होगा?

लाल अमृता जी, यह आप ही जैसे साहित्यकारो से जाना है कि अक्षर का सबध धर्म से है, अपनेपन से है जिसे सस्कृति कहते हैं। अक्षर का अर्थ है—जिसका 'क्षर', नाश न हो। यह एक ओर है। पर जिस अक्षर का दूसरी ओर व्यावसायिक-आर्थिक क्षेत्र मे व्यवहार होता है, वह अक्षर नही है शब्द भी नही वह तो एक लिपिबद्ध लेखनमात्र है जिसे इस वर्ग के लोगो ने साहित्य नाम दे रखा है। यह अक्षर नही क्षर है। शब्द नही लिपि मात्र है। इस लिपि के पर्दे मे कोख मे किसी तरह ताकत हथियाने, नाम, धन, पद लूटने की मारामारी है। यह साहित्य के नाम पर नगी राजनीति है।

जिस अक्षर से साहित्य बनता या रचित होता है उस अक्षर का सबध अर्थात उस साहित्य का विषय व्यक्तिगत होता है। 'इडिविजुअल' नही। यहा पर मैं भारतीय 'व्यक्ति' शब्द और पश्चिम के 'इडिविजुअल' शब्द के परस्पर विरोध पर जोर देना चाहता हू। व्यक्ति शब्द के धातुमूलक अर्थ का आशय है, जो अपनी विशेषताओ के भीतर से व्यक्त हो उठा है वही व्यक्ति है। 'इडिविजुअल' का धातुमूलक अर्थ है वह अतिम इकाई जिसका आगे विभक्तिकरण सभव नही है। हमारा अधिकांश तथाकथित आधुनिक साहित्य इसी इडीविजुअल का साहित्य है, जिसमे स्वभावत अक्षर का गौरव नहीं है। मैं तो यहा तक कहता हू कि उसमे शब्द का भी गौरव नही है। क्योकि उनमे अपनी कोई विशेषता व्यक्त नही हो रही है।

व्यक्ति की विशेषता उनके साहित्य में तभी व्यक्त हो सकती है, जब वह व्यक्ति स्वयं स्वतंत्र हो। वह अपने आप में पूरी तरह से यह विश्वास कर सके कि इस जगत में पूरी तरह से उसके अनुरूप दूसरा नहीं है।

आज हम साहित्य जगत में जब यहां तक देखते हैं कि नामों के ऊपर एक लेखक दूसरे पर मुकदमा ठोकने को विवश है तो यही लगता है कि वह अक्षर की गरिमा से बहुत दूर हटकर पश्चिम के 'इंडिविजुअल' पर चला गया है।

मेरे ख्याल में जिस दिन व्यक्ति अपने सही धरातल से अक्षर की महिमा पुनः प्राप्त कर रचना क्षेत्र में उसे लाएगा उसी क्षण अक्षर की गरिमा उसे अनुभूत होगी। वही अनुभूति साहित्य का पद पुनः प्राप्त करेगी।

किंतु आज के अधिकांश साहित्य में अक्षर का गौरव नहीं है मसलन साहित्यकार होने का आत्म-गौरव नहीं है, यह महसूस कर लज्जित होना पड़ता है। जिस विशेष गुण से यहां सारा दृश्य जगत, मानव व्यवहार, दुख-सुख, नाते रिश्ते शब्दों में इस तरह व्यक्त हो उठते हैं कि हमारा चित्त उन्हें स्वीकारने के लिए बाध्य हो जाता है। वही तो है अक्षर गुण। यही गुण प्रायः दुर्लभ होता जा रहा है। इसका मूल कारण इस देश की वही राजनीति है, जिसने अधिकांश साहित्यकारों को अपनी साहित्य रचयिता की भूमि से उठाकर राजमहल की खिड़की के पास खड़ा कर दिया है। साहित्य रचयिता अपने जिस अक्षर वैभव पर स्थित होता है, उसमें वह शक्ति होती है, जिसे केवल वही जानता है। जिसे नाम दिया गया है कल्पना-शक्ति, रचना शक्ति, सौंदर्य शक्ति। जिसे मैं शिव शक्ति मानती हूं।

अमृता नौ ग्रहों की तरह नौ सवाल ही मन में आये हैं। इसलिए यह नौवां आखिरी सवाल पूछती हूं कि पाकिस्तान के एक शायर मजहरउल् इस्लाम ने नए साल की दुआ मांगते हुए तड़पकर खुदा से कहा है, 'ऐ खुदा, इस आने वाले साल में तू सब अदीबों की नज्मों और कहानियों में सच्चाई और मुहब्बत उतार।" मैं मानती हूं, मैं भी इस दुआ में शामिल हूं। लेकिन एक चीज होठों पर तड़पती है कि ये दुआ मांगने की नौबत

क्यों आई ? आप क्या कहना चाहेंगे ?

लाल अमता, दुआ मागने की नौबत इसीलिए आई कि साहित्यकार अपने व्यक्ति स्थान से टूटकर औरों से परिचय सम्मान, यश, सत्ता प्रशसा प्राप्त करने के स्थान पर चला गया। साहित्यकार नामक 'व्यक्ति' के लिए इस मायने में खुदा भी दूसरा या पराया (और) ही है। मागना चाहे किसी से भी हो मागना तो मागना ही है। मागना है तभी तो परिचय पर, श्रेणी पर, वर्ग पर इतना बल है। परिचय, पहचान के आधार पर दूसरे से मागने पर चूकि इतना अधिक जोर है फलत राज्य और सत्ता इतना हावी हो चुकी है साहित्यकार पर कि अपने समाज से, अपने आप से कटा और उखडा हुआ वह सबसे अधिक अरक्षित असहाय हो गया है—तभी तो खुदा की याद आई है। पहले उस याद, उस दुआ मागने की नौबत क्या नही आई, जो आज याद आ रही है। क्योंकि साहित्य कर्म और दुआ दोनों में इतना फर्क नही था तब।

मेरा निवेदन है अमताजी, चूकि यह भाषा आप ही समझ सकती हैं—क्योंकि ऐसी भाषा आप जैसी शायरा और श्रेष्ठ गद्यकार की ही हो सकती है कि मृदु स्वभाव वाला हिरण भागकर ही अपनी जान बचाता है लेकिन साहित्यकार अपने लिखे अक्षरों से भागकर कहा जा सकता है !

□□

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का विख्यात उपन्यास

बया का घोंसला और साँप

डा० लाल का पहला और अति प्रसिद्ध उपन्यास, जो आज भी उनकी एक सफलतम कथाकृति के रूप में सम्मानित है। अपने ढंग के अनूठे कथाशिल्पी और नाटककार डा० लाल की यह प्रथम महत्त्वपूर्ण कृति है जिसकी असाधारण ताजगी अवध प्रदेश के ग्रामांचल की यथार्थता और एक अनुपम कलाकार द्वारा बड़ी कुशलता से प्रस्तुत की गईं इस लोकप्रिय उपन्यास की चरित्र छवियां, सदा सर्वदा के लिए सहृदय पाठक के मन मस्तिष्क में स्थायी जगह बना लेनेवाले इसके प्रमुख पात्र और इसकी अत्यंत रोचक कथा इसे सहज ही हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक अति उल्लेखनीय उपलब्धि सिद्ध कर देती है, और इसे एक क्लासिक के स्थान का दावेदार बना देती है।



डा० लक्ष्मीनारायण लाल
के लोकप्रिय नाटक



अब्दुल्ला दीवाना



दूसरा दरवाजा



पंच पुरुष